तिरुमल तिरुपति देवस्थान

सप्तगिरि

सचित्र मासिक पत्रिका

अगस्त-2019 रु.5/-

श्री प्रतिवादि भयंकरं
अण्णन्स्वामी जयंती
०१-०८-२०१९

श्री वै.वी.सुब्बारेड्डी ने तिरुमल श्री वेंकटेश्वर स्वामी का दर्शन किया। इन्होंने दि. २२-०६-२०१९ को ति.ति.दे. न्यासमंडली के अध्यक्ष के रूप में शपथ लेकर पदभार संभाला।

श्री अनिलकुमार सिंघल, आई.ए.एस. कार्यनिर्वहणाधिकारी, तिरुमल के पूर्व संयुक्त कार्यनिर्वहणाधिकारी श्री के.एस.श्रीनिवासराजु, आई.ए.एस. तथा तिरुपति के पूर्व संयुक्त कार्यनिर्वहणाधिकारी श्री पी.लक्ष्मीकांतम्, आई.ए.एस. ने इस अवसर पर अध्यक्ष को श्री वेंकटेश्वर स्वामी का चित्रपट भेंट किया।

श्री पी.बसंत कुमार, आई.ए.एस., ने तिरुमल श्री वेंकटेश्वर स्वामी का दर्शन किया। इन्होंने दि. ०७-०७-२०१९ को ति.ति.दे. के संयुक्त कार्यनिर्वहणाधिकारी (तिरुपति) के रूप में शपथ लिया। इस अवसर पर ति.ति.दे. के अधिकारियों ने उन्हें स्वामी का तीर्थप्रसाद भेंट दिया।

ति.ति.दे. के संयुक्त कार्यनिर्वहणाधिकारी श्री के.एस.श्रीनिवासराजु, आई.ए.एस. के स्थानांतरण पर ०७-०७-२०१९ को उनकी विदाई के संदर्भ में ति.ति.दे. के कर्मचारियों ने श्रीहरि का चित्रपट भेंट देकर सम्मान किया।

ति.ति.दे. के संयुक्त कार्यनिर्वहणाधिकारी (तिरुपति) श्री पी.लक्ष्मीकांतम्, आई.ए.एस. की सेवानिवृत्ति [३०-०६-२०१९] के उपलक्ष्य में विदाई समारोह का आयोजन।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय।।

(- श्रीमद्भगवद्गीता १-१)

धृतराष्ट्र बोले - हे सञ्जय! धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में एकत्रित, युद्ध की इच्छावाले मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया?

एतत्पुण्यं पापहरं धन्यं दुःख प्रणाशनम्।
पठतां श्रुण्वतां वापि विष्णोर्माहात्म्य मुत्तमम्।।

(- गीता मकरंद, गीता का प्रभाव)

विष्णु का यह उत्तम माहात्म्य (गीताशास्त्र) पाठकों और श्रोताओं को पुण्य लाभ कराएगा। यह पापनाशक दुःखविनाशक एवं धन्यकारक है।

श्री वेंकटेश्वर अन्नप्रसाद ट्रस्ट

तिरुमल, तिरुचानूरों में हजारों की संख्या में भक्तों को प्रतिदिन अन्नप्रसाद वितरण होने की बात भक्तों को विदित ही है। अब ति.ति.दे अन्नप्रसाद ट्रस्ट ने भक्तों, दाताओं को दान देने का और खूना अक्सर देना चाहता है। इसलिए एक दिन दान की योजना प्रवेश कर रहा है।

एक रोजाना खर्च -

१. एक दिन - ३० लाख

२. अल्पाहार - ७ लाख

३. मध्याह्न भोजन - ११.५० लाख

४. रात्रि भोजन - ११.५० लाख

इस नकद को दाताओं से संग्रहित करने के लिए सिद्ध हो रहा है। तिरुमल तिरुपति देवस्थानों का अन्नदान ट्रस्ट। दाताओं - व्यक्तियों/कंपनियों/संस्थाओं/ट्रस्टों/संयुक्त ढंग की व्यवस्था हो सकती है। ये रोजवारी नकद कुल ३० लाख या अल्पाहार - ७ लाख या दोपहर का भोजन - ११.५० लाख / रात्रि भोजन - ११.५० लाख प्रदान कर सकते हैं। दाताओं को ति.ति.देवस्थान के द्वारा आयोजित सुविधाएँ एक रीत होंगी।

अन्य विवरण के लिए संपर्क करें -

विशेषाधिकारी, श्री वेंकटेश्वर अन्नप्रसाद ट्रस्ट,

ति.ति.दे. प्रशासनिक भवन, के.टी.रोड, तिरुपति।

(www.tirumala.org वेबसाइट में भी दरसा सकेंगे)

दूरभाषा - ०८७७-२२६४२५८, ०८७७-२२६४३७५, ०८७७-२२६४२३७.

(सूचना - उपर्युक्त विषयों पर परिवर्तन होनी की संभावना है।)

सप्तगिरि

वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं
ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन,
वेङ्कटेश समो देवो
न भूतो न भविष्यति।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान की
सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष-५० अगस्त-२०१९ अंक-०३

विषयसूची

श्री प्रतिवादि भयंकरं अण्णन् स्वामीजी का जीवन चरित्र	श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर श्रीनिवासाचार्य	07
महर्षि कश्यप	श्री ज्योतीन्द्र के. अजवालिया	12
वरलक्ष्मी व्रत	डॉ.बी.ज्योत्स्नादेवी	15
भक्तिन तरिगोंडा वेंगमांबा	डॉ.सी.आदिलक्ष्मी	17
गायत्री महामंत्र उसका वैशिष्ट्य	श्री पी.वी.लक्ष्मीनारायण	22
श्री रामानुज नूट्रंदादि	श्री श्रीराम मालपाणी	26
श्री हयग्रीव अवतार	डॉ.के.एम.भवानी	31
श्रीकृष्ण जन्मपर्व ''जन्माष्टमी''	श्रीमती प्रीति ज्योतीन्द्र अजवालिया	33
गोदादेवी जन्मनक्षत्रोत्सव! गोविंद को समर्पित पुरिशै वंशस्थों का उद्यानोत्सव!!	श्रीमती पी.सुजाता	35
शरणागति मीमांसा	श्री कमलकिशोर हि. तापडिया	40
भागवत कथा सागर राजा पृथु एक शक्तिशाली अवतार	श्री अमोघ गौराँग दास	42
श्री प्रपन्नामृतम्	श्री रघुनाथदास रान्दड	44
नौजवानों के लिए सतोगुणी प्रसन्नता आवश्यक	श्री अमोघ गौराँग दास	46
ॐ श्रीमू ब्रह्मात्रे नमो नमः !!	डॉ.एम.रजनी	48
राखी	श्री एल.आर.डी.मूर्ति	52
राशिफल	डॉ.केशव मिश्र	53

गौरव संपादक
श्री अनिलकुमार सिंघाल, आई.ए.एस.,
कार्यनिर्वहणाधिकारी, ति.ति.दे.

प्रधान संपादक
डॉ.के.राधारमण

संपादक
डॉ.वी.जी.चोक्कलिंगम

उपसंपादक
श्रीमती एन.मनोरमा

मुद्रक
श्री आर.वी.विजयकुमार, बी.ए., बी.एड्.,
उपकार्यनिर्वहणाधिकारी,
(प्रचुरण व मुद्रणालय),
ति.ति.दे. मुद्रणालय, तिरुपति।

श्री पी.शिवप्रसाद,
सेवानिवृत्त चित्रकार, ति.ति.दे., तिरुपति।

स्थिरचित्र
श्री पी.एन.शेखर, छायाचित्रकार, ति.ति.दे., तिरुपति।
श्री बी.वेंकटरमण, सहायक चित्रकार, ति.ति.दे., तिरुपति।

मुखचित्र
श्री प्रतिवादि भयंकरं अण्णनूस्वामी
(तिरुमल श्रीवारि सुप्रभात लेखक)

चौथा कवर पृष्ठ
नवनीतकृष्ण (तिरुमल श्रीवारि मंदिर)

सूचना

मुद्रित रचनाओं में व्यक्त किये विचार लेखक के हैं। उनके लिए हम जिम्मेदार नहीं हैं। *– प्रधान संपादक*

अन्य विवरण के लिएः
CHIEF EDITOR, SAPTHAGIRI, TIRUPATI - 517 507.
Ph.0877-2264543, 2264359, 2264360.

website: www.tirumala.org or www.tirupati.org
वेबसैट के द्वारा सप्तगिरि पढ़ने की सुविधा पाठकों को दी जाती है। सूचना, सुझाव, शिकायतों के लिए - sapthagiri_helpdesk@tirumala.org

जीवन चंदा .. रु.500-00
वार्षिक चंदा .. रु.60-00
एक प्रति .. रु.05-00
विदेशियों को वार्षिक चंदा .. रु.850-00

संपादकीय

तिरुमलगिरियों में वनसंपत्ति

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृत मस्नामि प्रयतात्मनः।।

ऐसा भगवद्गीता में कहा गया है। भगवान ने कहा कि- भक्तिभावना के साथ इनमें से किसी एक को भी समर्पित करें, तो वे स्वीकार करेंगे। पंचभक्ष्य परमान्न जैसे उत्कृष्ट प्रसाद होने पर भी, उन सबके बारे में गीता में नही बताया गया। फल, पुष्प, पत्र, तोय इत्यादि नित्य नूतन चीजें माने जाते हैं। सभी जीव-जातियों के लिए ये चीजें निर्मल व सर्वजीवि संजीवनी हैं। और निरंतर त्याग से भरी जीवन का प्रतीक है। उन चीजों के जीवन सत्य को अपना बनाकर, त्यागमूर्ति व माधव बनकर आगे बढना चाहा। लेकिन हमारे ऋषि व मुनि लोग, जन समूह से दूर जाकर, किसी पहाडी टहनियों में, बहती झरनों के नदियाँ, फल-पुष्प से भरी वन मार्गों में, आश्रम तथा मन्दिरों का प्रबन्ध करके, सुखद एवं स्वास्थ्य से भरी वनसंपत्ति के बीच, मन को भगवान के प्रति संलग्न करके, तप में लीन होते हैं। इस प्रकार मानव परमात्मा की सेवा में अपने अनमोल तथा नित्य निर्मल चीजों को समर्पित करके, मन की पवित्रता तथा परिपक्वता को बढ़ाया।

जब से मनुष्य, बिना किसी पहचान के रहनेवाले परमात्मा को, एक नाम देकर, गाँव की सीमा पर प्रतिष्ठित करके, पूजार्चनादि कार्य शुरु किया। तब से मठ, आश्रम आदि का प्रबन्ध किया। नाम-जप-यज्ञ के साथ-साथ फलयज्ञ, पुष्पयाग जैसे पूजा कार्यक्रम आयोजित किया है। उस दिव्य विभूति संदर्शन के परमानंद में मग्न होकर 'अभिषेक प्रिय शिवः', 'अलंकार प्रियो विष्णुः', 'नमस्कार प्रियो भानुः' कहते हुए, किस भगवान को कौन से नाम से अर्चना करके धन्य होना है, अगले पीढ़ी को सविवरण बताया है। उसी पद्धति में मंदिरों में पल्लवोत्सव, फलोत्सव, प्लवोत्सव, पुष्पयाग जैसे पूजा कार्यक्रमों का निर्वहण करना कोई नई बात नही है। सुरुचिर स्निग्ध वदन के साथ भक्तिभाव से देवतावों की अर्चना करके, जन्म धन्य बनाने के लिए मानव द्वारा की जानेवाले प्रयासों का प्रतिबिम्ब ही यह पूजा कार्यक्रम हैं।

लेकिन समय बदल गया है। अनश्वर विषयों को अधिक प्राधान्य देकर, दैनिक अवसरों के संबंधित विषयों पर अज्ञान व अनुशासनात्मक व्यवहार के परिणाम स्वरूप पेड और पानी लुप्त हो रहे हैं। और पृथ्वी विषमय बन रही है। दिव्य जल-फल संपत्ति से भरे घने जंगल, मात्र कहानियों में शेष रह गये हैं। और जीव जनों को केवल व्यथा भरित अनुभव ही रह गये हैं। शास्त्र कोविदों का ढ़के की चोट पर कहना है कि यदि यह दुर्गति इसी प्रकार जारी रहेगी तो कुछ सालों में ही इस देश में मरुभूमि अधिक हो जाने के कारण, प्रलय आने की संभावना रहेगी।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान केवल फलपुष्पयाग जैसे कार्यक्रम करने तक ही सीमित न रहकर उस वनसंपत्ति का परिरक्षण व पोषण करने के लिए कई कार्यक्रमों का आयोजन भी कर रही है। नन्दनोद्यान व दिव्याराम वाटिकावों को स्थापित करके, प्राकृतिक सहजत्व को पुनःप्रतिष्ठित करने के साथ-साथ तिरुमलगिरि के पहाडों पर भी विभिन्न प्रकार के वृक्ष लगाकर, पूरे पर्वत प्रान्त को हरितमय बनाने के लिए बहुत सारी योजनावों का पालन कर रही है। लेकिन करने की इच्छा चाहे कितना भी हो, पर काम एक सीमा के अन्दर ही किया जाना चाहिए। यदि दूरी-भरी वनसंपदा से हमे अपने अस्तित्व को बनाये रखना हो तो, सभी संरक्षण वादियों को अपने-अपने क्षेत्रों में, विशेष रूप से मन्दिर प्रांतों में वनसंपत्ति को और ज्यादा बढ़ाने की कोशिश करना चाहिए। जहाँ तक हो सके वनसंपत्ति सभी जीव-जाति के लिए सहयोगी होना चाहिए। तभी मनुष्य की उत्तरजीविता का परमार्थ प्राप्त होती है। यह याद रखना चाहिए कि किसी भी देश में अशांति और चिंता का एक मात्र कारण वनसंपत्ति का न होना ही है।

आदमी के पहले से मौजूद है वनसंपत्ति! वह हरण कर सकती है हमारी आपत्ति!!

आइयें! वृक्षों को बोएँ!! वनसंपत्ति को बढ़ाएँ!!!

श्री प्रतिवादि भयंकरं अण्णन्स्वामीजी का जीवन चरित्र

- श्रीकांची प्रतिवादि भयंकर श्रीनिवासाचार्य

श्रीकांचीपुरी एक पुण्यनगरी है। इस भारतपुण्यभूमि के दक्षिण भाग में विद्यमान महानगरी है। भूमिदेवी के कांची के जैसा (मेखला) आभूषण है। इस को सत्यव्रतक्षेत्र कहते है। यहाँ किया एक धर्म कार्य रजारगुणा फल देनेवाली है यह कांची सन्त, महन्त, पुण्यात्मा, महात्माओं का निवासस्थान है। पुण्यनदी वेगवती के किनारे विद्यमान यह नगरी सत्यव्रतक्षेत्र में अन्तर्गत है। मोक्षदायिका सात पुण्यपुरियों में एक है। श्री विष्णु भगवान के १०८ दिव्यदेशों में यह एक है।

इस महानगरी में अनन्ताचार्य नाम के महापुरुष रहते थे जो जगदाचार्य भगद्रामानुजाचार्य से विशिष्टाद्वैत श्रीवैष्णव दर्शन के प्रचारार्थ (७४) सिंहासनाधिपतियों के अन्तर्गत ''मुडुम्बै नम्बि'' (वरदाचार्य) और जो महान आचार्य श्रीकृष्णपादसूरि एवं पिल्लै लोकाचार्य के पूर्वपुरुष (मूलपुरुष) के वंशज थे। श्रीअनंताचार्य सभी शास्त्रों के वेत्ता एवं आत्मगुण सम्पन्न थे। श्री वरदराज भगवान के परमभक्त एवं सांसारिक जीवन से विरक्त महात्मा थे।

श्रीहस्तिगिरिनाथ श्री वरदराज भगवान ने सोचा कि जीवों के मोक्षप्राप्ति के लिये, राम कृष्णादि रूप में अपनी अवतार की अपेक्षा, आल्वार आचार्य ही समर्थ हैं। इस विचार से स्वयं आचार्य रूप में अवतार करने के लिये श्री अनन्ताचार्य और उनकी धर्मपत्नी श्री आण्डालदेवी के पुत्र हुए। यह पुत्ररत्न कलियुग के ४४६३ वां वर्ष में, जिस का १३६२ ए.डी. समान वर्ष है, प्लव संवत्सर में कर्कट मास में (आषाढ) कृष्णचतुर्दशी, गुरुवार, पुष्यनक्षत्र (गुरुपुष्यं) अन्य कई ग्रहों के उच्च रहते, अवतार लिये। इस बच्चे को देखकर बडे लोग आश्चर्यचकित हुए कि श्री वरदराज भगवान ही इस पुत्र के रूप में अवतार लिए। तत्तदुचितकाल में जातकर्म आदि वैदिक संस्कारों से श्री अनन्ताचार्य, संस्कृत किये। इस पुत्र का नाम हस्त्यद्रिनाथ अण्णा, जो श्री वरदराज भगवान का नाम है, नाम रखा।

वार्षिक तिरुनक्षत्र (०१.०८.२०१९) के संदर्भ में...

श्रीवेदान्ताचार्य स्वामी (वेदन्तदेशिक) के जो श्री वेंकटेशजी की घण्टा के अवतार थे, सुपुत्र नयनवरदाचार्य की जिन की कुमारवेदांताचार्य नाम से प्रसिद्धि है, सन्निधि में वेद, पुराण आदि शास्त्र एवं अध्यात्म शास्त्रों का अध्ययन किया। उचित समय विवाह कर जो लोग अध्यात्म ज्ञान की अभिलाषी हैं, उन को अध्यात्म शास्त्रों का अध्ययन कराकर, ज्ञान प्रदान करते थे।

श्री हस्त्यद्रिनाथाचार्य अण्णास्वामी, शालकूप से, श्री वरदराज भगवान की पूजा के लिए, प्रतिदिन तीर्थ लाया करते थे। इस प्रकार भगवत्सेवा नियमित रूप से करते थे।

इस समय, एक साकल्यमल्ल नाम के दुर्बोधन से नृसिंहमिश्र नाम के एक मायावादी, गाडीभर पुस्तक लाकर श्री कांची आकर श्री वरदाचार्य को शास्त्रार्थ करने के लिए पुकारा कि सामर्थ्य हो तो मेरे मायावाद को खण्डन कर श्रीविशिष्टाद्वैतसिद्धान्त को स्थापित करो। इन का यह शर्त था कि जो हार जायगा वह जीतनेवाला का शिष्य बनना।

श्री वरदाचार्य वयोवृद्ध थे, वार्धक्य के कारण स्वयं जा नहीं सके और शिष्यों की ओर दृष्टिपात किये कोई ऐसा शास्त्रार्थ करने समर्थ शिष्य है क्या?

उपस्थित शिष्य शास्त्रार्थ करने के भय से छुप रहे तो श्री अण्णा स्वामी खडे होकर आचार्य से प्रार्थना किये कि आशीर्वाद और शास्त्रार्थ करने की आज्ञा प्रदान करें।

आचार्य अण्णा स्वामीजी के धैर्य से बहुत संतुष्ट हुए आलिंगन कर एक पान की पत्ती में श्री हयग्रीव बीजाक्षर को

लिख कर अण्णा स्वामी को दिये, वे इसे खाये। आचार्य सभा में यह घोषित किये यह (अण्णा स्वामी) जैसे मेरे पिता ने अनुग्रह किया मेरे ज्ञानपुत्र हैं यह शास्त्रार्थ में जय पाकर श्रीरामानुजदर्शन की झण्डा को ऊँचा फहरायेगा।

आचार्य की आज्ञा को शिरोधार्य कर, नृसिंह मिश्र से शास्त्रार्थ करने के लिये गये। वह मिश्र, इनकी छोटी अवस्था को देखकर, इन के ज्ञान को नहीं समझते हुए अट्टहास से हंसकर (हंसी उडाते हुए) बोले कि विवाह और विवाद (शास्त्रार्थ) समान स्तर वालों में हो तो शोभा देते हैं। तुम्हारे जैसे कम स्तर वाले से बात तक करना नहीं चाहता हूँ। फिर भी मैं तुम्हारे ज्ञान की सामान्य प्रश्न से परीक्षा लेता हूँ।

अण्णा स्वामीजी बोले कि मल्लयुद्ध या द्वन्द्वयुद्ध करने वाले नहीं है। जिस से बलपरीक्षा हो। अवस्था कोई समस्या नहीं। विद्या ही से यश प्राप्त होता है। आप प्रश्न कीजिये। (मिश्रजी का यह आशय है यह बालक है विद्याध्ययन भी पूर्ण नहीं किया होगा शब्द मञ्जीरी का भी ज्ञान इन को नहीं आदि।)

मिश्रजी का प्रश्न था ''कापूर्वः'' (का पूर्वः ऐसा दो शब्द समझ कर अर्थ करें तो 'तुम्हारे पूर्वज कोन है' होगा लेकिन यह प्रयोग व्याकरण शास्त्र के विरुद्ध है।

लेकिन अण्णा स्वामीजी सही अर्थ समझ लिये (का पू.वः) इन तीन शब्दों की सन्धि है। इस का अर्थ तुम्हारा शहर कौन सा है। अण्णा स्वामीजी उत्तर दिये कि कांची मेरा शहर हैं। (संस्कृत भाषा में व्याकरण शास्त्र के अनुसार 'कांचीपूर्णः' यह उत्तर था) जैसा मिश्रजी व्यंग्य प्रश्न किये वैसा अण्णा स्वामीजी व्यंग्य जवाब दिये। तब मिश्रजी समझ गये यह विद्यार्थी बालक नहीं हैं। होशियार बुद्धिमान हैं।

अण्णा स्वामीजी मिश्रजी को शास्त्रार्थ प्रारम्भ करने को कहा। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

अण्णा स्वामीजी मायावाद को खण्डन कर विशिष्टाद्वैत तत्त्वार्थों को सम्यक् प्रतिपादन किये। इन के वाद के सामने मायावाद कुछ नही चला। मायावादी, विशिष्टाद्वैत पर जो जो आक्षेप लगाया उन सबका अण्णा स्वामी खण्डन कर दिये। अण्णा स्वामीजी श्रीरामानुज सिद्धांत को सर्वोपरि स्थापित कर दिये। मिश्रजी अपनी हार को स्वीकार कर लिये और अण्णा स्वामी के चरण में गिर पडे। मिश्रजी को साथ लेकर आचार्य के पास आये। आचार्यजी को पहले ही समाचार मिल गया कि अण्णा स्वामी का विजय हो गया। आचार्य, अण्णा स्वामीजी के वाद सामर्थ्य से प्रसन्न हुए और गले लगाकर कहा ''आप से श्रीरामानुज सिद्धान्त बहुत अच्छे ढंग से परिपालित हुआ (बचाया गया) तुम्हारा यश फैल गया। आज से हमेशा के लिये तुम 'प्रतिवादि भयंकर' नाम से प्रसिद्ध होंगे। यह मिश्र तुम्हारे दायें हाथ जैसे सहयोगी रहेंगे। मैं तो वार्धक्य से थक गया हूँ। आगे तुम ही इस भार को वहन करो। श्रीमन्नाथमुनि, श्रीयामुनमुनि, श्रीरामानुजमुनि से संरक्षित यह विशिष्टाद्वैत दर्शन तुम्हारे नेतृत्व में और भी अभिवृद्ध होगा।''

फिर आचार्य अण्णा स्वामी, मिश्रजी और अन्य शिष्यलोगों को लेकर भक्तिभावनापूर्ण हस्तिगिरी वरदराज भगवान के पास गये। भगवान अर्चक के मुख से अण्णा स्वामी को 'प्रतिवादि भयंकर' सम्बोधित कर जीवात्माओं के उद्धार के लिये हमारे से अभिव्यक्त यह दर्शन आज तुम्हारे से नाथमुनि आदि आचार्यों से

परिपुष्ट होकर सारे अडचनों से दूर होकर (कांटो से दूर होकर) सम्यक् स्थापित किया गया। मैं इस मिश्रजी को तुम्हारा शिष्य बनाया। उनको साथ रखकर इस दर्शन का अभिवर्धन करो। फिर भगवान आचार्य से कहे इतने समय आप इस भार को वहन कर रहे थे अभी काफी वृद्ध हो गये हैं।

अण्णा स्वामी को शिष्य बनाकर दिये आप के पिताजी के आशीर्वाद से ज्ञानपुत्र भी मिल गया अब आगे के लिये अण्णा स्वामी को नेता बनाईये, यही इस कार्य के लिये योग्य व्यक्ति है। फिर आचार्य तीर्थ श्रीशठकोप आदि मर्यादा को प्राप्त कर सब को विसर्जित कर स्वस्थान गये।

अण्णा स्वामी, मिश्रजी को पंचसंस्कार से संस्कृत कर उनको सारे सम्प्रदायार्थों को उपदेश किया। वे भी अच्छे श्रीवैष्णव होकर स्वामीजी से प्रीतियुक्त बन कर गये।

अण्णा स्वामी ''प्रतिवादि भयंकर'' विरुद से प्रख्यात हो गये। भगवान की सेवा करते हुए सानन्द कांची में रहने लगे।

कुछ साल बाद आचार्य नयनवरदाचार्य स्वामी, अण्णा स्वामी और अन्य शिष्यों को पास में बुलाये और कहे कि, मेरे पुत्रों, मैं यथाशक्ति भगवान की सेवा किया। मैं इस संसार को चोडकर परमपद जाना चाहता हूँ। मुझे विदा कर दीजियेगा। मेरे प्यारे अण्णा तुम्हारी योग्यता के बारे में ज्यादा कहने को नहीं। दर्शन के नेतृत्व को मैं हृदय से तुम्हारे ऊपर छोड दिया हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम पूर्णरूप से समर्थ हो सम्भाल लेंगे।

अन्य शिष्यों को सम्बोधित कर आचार्य ने कहा तुम लोगों को एक अच्छा नेता मिल गया है। मेरे प्रति जो श्रद्धाभाव, भक्तिभाव दिखाते रहे, अण्णा स्वामी के प्रति भी उसी प्रकार रहना। तुम लोगों का यह सौभाग्य है कि तुम लोगों को एक अच्छा नेता प्राप्त हुआ है।

आचार्य परमपद को प्राप्त किये। शिष्यलोग बहुत दुःखी हुए। फिर अपने संभालकर आचार्य के चरमकैंकर्य को विधिवत सम्पन्न कराये। तिरुअध्ययन उत्सव को (वैकुण्ठोत्सव) बहुत वैभव से सम्पन्न कराये।

बाद में अण्णा स्वामी अपने साथ अन्य विद्यार्थियों को लेकर वरदराज भगवान के दर्शनार्थ गये उनके सामने दुःखी रहे। भगवान ने कहा ''हे अण्णा संसार की यह नीति है जो जन्म लेगा उनकी मृत्यु निश्चित है। अपने अपने कर्म के मुताबिक यह चलता है। मैं इस संसार चक्र को नीतिबद्ध चलाता हूँ। आप के आचार्य को भी यही नियम लागू हुआ। वे अपने कर्तव्य भली भांति निभाकर परमपद चले गये। इसलिये शोक नहीं करना। तुम तुम्हारे लिये जो सेवा नियत है उसे संभालते चलो। तुम जीते रहो।''

अण्णा भगवान की इस उक्ति से आश्वस्त हुए और लौट कर भगवान की आज्ञा का पालन करने का संकल्प ले लिया। इस प्रकार भगवान की तथा भागवतों की सेवा करने में अपने जीवन को बिताने लगे।

इनके तीन पुत्र हुए। ये लोग वैदिकाग्नि जैसे शुद्ध रहे। इन को क्रम से श्रीनिवासाचार्य, अनन्ताचार्य, अलगियमणवाल पेरुमाल (रम्यजामातृदेव) नाम रखकर तत्काल से तत्संस्कारों से संस्कृत कराये। सारे विद्याओं को सिखाये।

इस सन्दर्भ में वीरनरसिंहराय नाम के एक आन्ध्र प्रान्त के राजा अण्णा स्वामी के वैभव को सुनकर प्रभावित हुए और कांची आचार्य से भेंट करना चाहकर कांची आये और आचार्य को साष्टांग प्रणाम कर प्रार्थना किये कि अपने को पंचसंस्कार से संस्कृत कर श्रीवैष्णव बना कर शिष्य स्वीकार करें।

इनकी सच्ची भावना को पहचान कर उनको यथाविधि अपना शिष्य बनाये। उनके आत्मोन्नति के लिये जो सिखाना है, सिखाकर सच्चे श्रीवैष्णव प्रपन्न बनाये। राजा ने अपने राज्य आदि पूरी सम्पत्ति को आचार्य को समर्पित की। आचार्य ने सब सम्पत्ति को लौटाकर उनको कहा अपने प्रतिनिधि होकर यथान्याय राज्य चलावें। फिर भी राजा ने आचार्य उनके परिवार को कीमती वस्त्र, आभूषण, छत्र, चामर, सिंहासन पालकी भेंट कर वापस अपने राज्य की ओर चले।

ऐसे अच्छे ढंग से समय चलते एक दिन वरदराज भगवान की सन्निधि में श्रीशठकोपसूरि से अनुगृहीत सहस्रगीति का पाठ चल रहा था। सन्दर्भ यह था श्रीशठकोपसूरि अपनी अभिलाषा को व्यक्त करते हुए अपने मानसिक परिस्थिति को कह रहे हैं श्रीवेंकटेश भगवान का अविच्छिन्न रूप से कैंकर्य करना है। इस को सुनकर आचार्य को भी अभिलाषा हुई कि श्रीशठकोपसूरि के इस मानसिक अभिलाषा को स्वयं क्रियान्वित करें।

श्री वरदराज की आज्ञा पाकर आचार्य ने तिरुवेंगडम श्रीवेंकटाद्रि में श्रीनिवास भगवान की सेवा करने के लिए प्रस्थान किये। अलर्मेल्मंगतायार (पद्मावती-तिरुचानूर) और तिरुपति में श्री गोविन्दराज भगवान का दर्शन कर तिरुमलै पहुंच गये। श्रीनिवास भगवान को भक्ति भावनापूर्ण दर्शन करते अपने को विस्मृत हो गये। आश्चर्य यह हुआ वहाँ के आचार्य पुरुष तोलप्पाचार्य (मित्रतातााचार्य) अण्णा स्वामी के हाथ में एक घडा को देकर आप प्रतिदिन आकाशगंगा से तीर्थ लाकर उस में केसर आदि सुगन्धि द्रव्यों को मिला कर भगवान की तीर्थ सेवा कीजियेगा। यह सेवा भगवान को आनन्ददायक है। इस को भगवान की आज्ञा समझकर अण्णा स्वामीजी तब से तीर्थ सेवा करने लगे।

इस प्रकार समय को भगवत्सेवा में लगाते रहे तो एक दिन श्रीरंगम् से श्री वरवरमुनीन्द्रजी के एक श्रीवैष्णव शिष्य आये। श्री वरवरमुनीन्द्रजी श्रीरामानुजाचार्य के अपरावतार ही माने जाते हैं। और परम्पराक्रम से उन्ही के गद्दीपर विराजमान आचार्य हैं। अण्णा स्वामीजी उनका आतिथ्य किया और उन को सारी सुविधायें उपलब्ध कराये और श्रीवेंकटेश भगवान का दर्शन भी कराये। अण्णा स्वामीजी श्रीरंगम् के वृत्तान्तों को सुनने की इच्छा से उन से प्रश्न करने पर उन्होने श्री वरवरमुनीन्द्रजी का वैभव सुनाया। श्री वरवरमुनीन्द्रजी ज्ञान अनुष्ठान आत्मगुण नम्रता शास्त्रविषयों को सरल रीति से प्रतिपादन कर विशेषकर आल्वार व आचार्यों की श्रीसूक्तियों में उनका अगाध पाण्डित्य उन में तन्मयता आदि बातों को सुनकर उसी में भावविभोर हो गये। उनका मन उस वैभव में निमग्न हो गया। उसी तन्मयता से दूसरे दिन तीर्थ लाने में विलम्ब हो गया। तीर्थ लाकर उसमें सुगन्धि द्रव्य डालनेवाले ही थे उतने में मन्दिर से एक सेवक आकर पूजा में विलम्ब हो रहा है कहकर तीर्थ के घडे को उठाकर चले गये। अण्णा स्वामीजी भगवदपचार हो गया इस चिंता से सुगंधि द्रव्यों को लेकर मंदिर गये। उतने में पूजा होने लगी। अण्णा स्वामीजी भयभीत होकर खडे रहे। पूजा के समाप्त होते भगवान श्रीनिवास अण्णा स्वामीजी को सम्बोधित करके कहा कि आज तीर्थ में परिमल (सुगन्ध) विशेष है। क्या कराण है? अण्णा स्वामीजी सोचने लगे कि सुगन्धि द्वव्यों को तीर्थ में नहीं डाला फिर भगवान के ऐसे कहने का कुछ अन्य अभिप्राय (मतलब) होगा। श्रीवैष्णव से श्री वरवरमुनीन्द्रजी का वैभव सुनकर तन्मय हो गये थे श्री वरवरमुनीन्द्रजी का वैभव ही इसका कारण होना चाहिये।

यह विचार मन में उदित होते ही अण्णा स्वामी को श्रीरंगम् जाकर श्री वरवरमुनीन्द्रजी का दर्शन करने की उत्कण्ठा बढ गयी। भगवान श्रीवेंकटेशजी की आज्ञा मांगकर श्रीरंगम् के लिए प्रस्थान कर दिये। रास्ते में श्रीकांची में कुछ समय रहकर श्री वरदराज भगवान का अनुभव किया।

श्री वरवरमुनींद्रजी श्रीवैष्णव समाज के प्रधान आचार्य थे, भगवद्रमानुजाचार्य के आठवें पीढी के आचार्य बने। श्रीशैलेशाचार्य (तिरुवायमोलिपिळ्ळै) से सभी शास्त्रों को अध्ययन कर चुके थे। विशेष कर दिव्यसूरियों के (आल्वार) दिव्यप्रबन्धों के अर्थों को सहजरूप से अभिव्यक्त कर समझाने में समर्थ थे 'पेरिय जीयर' (महामुनि) इस गौरवान्वित नाम से प्रसिद्ध रहे।

श्री वरवरमुनीन्द्रजी वैभव को सुनकर असूयाग्रस्त होकर कृष्णानन्दी नामक एक मायावती एक सन्देश भेजा कि शास्त्रार्थ कर जय पावें। यह मायावादी पूर्व में श्री दाशरथिस्वामी (मुदलियाण्डान) वंशजात श्री वेडलप्पै नाम के शिष्य होकर वैष्णव था। कुसंग से सब को त्यागकर मायावाद करने से पतित हो गया। श्री वरवरमुनि स्वामीजी ऐसे आरूढपतित से बातचीत करना भी अनुचित समझकर उसी वैडलप्पै स्वामी को बुलाये। यह जान कर कि अपने भूतपूर्व श्रीवैष्णवाचार्यजी अपने से शास्त्रार्थ करने आ रहे हैं। लज्जित और भयभीत होकर भाग गया।

आगे कोई शास्त्रार्थ करने आवें उनको शास्त्रार्थ करने के लिये उस स्वामी को श्री वरवरमुनीन्द्र स्वामीजी अपने साथ श्रीरंग में रहने को कहे। इसलिये उनको यह कहा है शास्त्रार्थ करने में रुचि न रहना शास्त्रार्थ आदि में समय बीतता तो आल्वारों के मधुर श्रीसूक्तियों के अनुभव करने में बाधा होगी। जो उनको पसन्द नहीं। वेडलअप्पै स्वामी ने अपने वार्धक्य के कारण श्रीरंगम् में रहना स्वीकार नहीं किये। और अपने गांव लौट गये।

पेरियजीयर स्वामी (श्री वरवरमुनीन्द्र स्वामीजी) शास्त्रार्थ करने समर्थ एक विद्वान के प्रतीक्षा में लगे। अण्णा स्वामीजी ऐसे सामर्थ्यवाले जानकर उनको श्रीरंग बुला लाने के विचार

में थे। अण्णा स्वामी तिरुमलै में श्रीवेंकटेश के कैंकर्य में हैं जानकर उनको लाने के लिये दो श्रीवैष्णवों को तिरुमलै को प्रस्थान कराया। रास्ते में वे दोनों श्री कांची में आये और वरदराज भगवान का दर्शन करने लगे। तब उनको मालूम हुआ कि अण्णा स्वामी श्री कांची में मुकामकर रहे हैं। वे अण्णा स्वामी को श्री वरवरमुनीन्द्रजी का सन्देश पत्र दिये। अण्णा स्वामी बहुमानपूर्वक उस सन्देश पत्र को लेकर उस में लिखे वार्ताओं को पढकर भावविभोर होकर कहने लगे कि मैं धन्य हूँ मेरी अभिलाषा थी श्री वरवरमुनीन्द्रजी की दर्शन की उस को कार्यान्वित करने की बात ही इस वार्ता में है। मेरे से भाग्यवान कौन होगा? मैं श्रीरंगम जानेवाला इसलिये हूँ कि मैं श्री वरवरमुनीन्द्रजी को अपना प्रणाम व्यक्त करूं। मैं बहुत ही आनन्दित हूँ कि उन महान आचार्य की कृपावृष्टि मेरे पर हो रही है। मैं कुछ कठिन तपस्या कर लिया होगा। उस के फलतया यह सन्देश मिला है। मेरे मुकाबले कोई नहीं कि श्री वरवरमुनिन्द्रजी की कृपा को प्राप्त करूं। उन दोनों श्रीवैष्णावों को आतिथ्यकर यात्रा में हुए उनके श्रम को दूर किये।

दूसरे दिन अपने नित्यकृत्य को समाप्तकर वरदराज भगवान के दर्शनार्थ, उन दोनों श्रीवैष्णवों के साथ गये। दर्शन कर भगवान से, श्रीरंगम् जाने की आज्ञा लेकर अपने कुटुम्ब के साथ त्वरित गति से श्रीरंगम् चले।

अण्णा स्वामीजी आने का समाचार सुनकर श्री वरवरमुनीन्द्रजी अपने परिकर और मन्दिर के पार्षदगणों को उन के आह्वान के लिये भेजे जो छत्र चामर आदि बिरुदों को लिये थे।

अण्णा स्वामी मन्दिर में आये और देखे कि श्री वरवरमुनीन्द्रजी, चित्र मण्डप में विराजमान होकर सहस्रगीति की ईडु व्याख्या पर कालक्षेप (प्रवचन) कर रहे हैं। उनके सामने आकर साष्टांग प्रणाम किये। उनके पहुँचते ही जीयर स्वामीजी कालक्षेप बन्द कर साष्टांग प्रणाम करते अण्णा स्वामी को उठा कर आलिंगन कर प्रेमपूर्वक उनकी यात्रा और योगक्षेम आदि का प्रश्न किया। ऐसा शान्तिपूर्वक वार्तालाप करने लगे। कालक्षेप के आगे नहीं चलने का इस सन्दर्भ को देखकर मेरे दौर्भाग्य के कारण कालक्षेप बन्द हो गया शायद। इन के बात को सुनकर जीयरस्वामी कहने लगे कि 'प्रतिवादि भयंकर' स्वामी के सामने मैं क्या बोल सकूं'। अण्णा स्वामी इस बात को सुनकर दुःखी हो जीयर के चरणों में गिर पडे और गदगद स्वर से बोले कि मुझे प्रतिपक्षियों की गोष्ठी में प्रतिवादि भयंकर ऐसी प्रथा है लेकिन श्रीवैष्णवों की गोष्ठी में मैं उनका दास हूँ। आप भी अन्यथा न सोचें।

जीयर स्वामी विनम्रपूर्ण बात सुनकर प्रसन्न होकर उनकी नैच्यानुसन्धान से प्रसन्न होकर कहे कि आज से आप और आपके परम्परा के लोग 'श्रीवैष्णवदास' इस दास्य नाम से जाने जायेंगे।

आगे कालक्षेप चलने लगे। उस दिन का विषय था कि सहस्रगीति चौथे दशक प्रथम दशक था जिसमें श्रीशठकोपसूरि श्रीमन्नारायण ही परतत्व है इस की स्थापना करते हैं। जीयर स्वामी, शास्त्रों के आधार पर बहुत विवेचनात्मक प्रामाणिक कालक्षेप दे रहे थे खास कर भगवद्रामानुजाचार्य ब्रह्मसूत्र के अपने 'श्रीभाष्य' ग्रन्थ में नारायण की परतत्त्वता को स्थापित किये थे वैसा सारगर्भित बातें बता रहे थे। दिव्यप्रबंन्ध और उपनिषद समानता (समानार्थकता) को भी स्पष्ट किया।

गंगाजी के प्रवाह जल को पिये जैसा, जीयर स्वामी के प्रवचन से चकित हुए और कहने लगे आप के कृपापूर्ण अभिव्यक्ति के विना दिव्यसूरियों के दिव्यप्रबन्धों के गूढार्थ को जानना असम्भव है।

कालक्षेप को पूर्ण कर जीयर स्वामी अण्णा स्वामी के हाथ पकडकर भगवान रंगनाथ के सामने ले गये। भगवान, तीर्थ श्रीशठकोप आदि मर्यादा देने के बाद बोले कि पुष्पमण्डप में (तिरुमलै) जो हुआ मैं जानता हूँ। तुम बहुत दूर से आये हो। जो परिश्रम तुम ने उठाया उसके फलतया मैं तुम्हें अनमोल ज्ञानसम्बन्ध (आत्मसम्बन्ध) को अनुग्रह किया (याने श्री वरवरमुनीजी का सम्बन्ध)। जीयर स्वामी को तुम बायें हाथ जैसा रहो। जो भगद्रमानुजाचार्य दर्शन के विरोधी है उन्हें परास्त करो। पूर्वाचार्यों के दिये और जीयर स्वामीजी से परिपोषित आल्वारों के बोध को परिमण्डित करो। वाक से वर्णनातीत आनन्द को प्राप्तकर जीयर स्वामी के सहित उन के मठ में प्रविष्ट हुए।

(क्रमशः)

महर्षि कश्यप

- श्री ज्योतीन्द्र के. अजवालिया

हमारे भारत वर्ष धर्म की धरोहर जो हे वो है ऋषि मुनी और महर्षि। भारत में ऐसे कई ऋषि, मुनी और महर्षियों ने जन्म लिया है। जैसे की महर्षि-पुलह, अगस्त्य, च्यवन, कश्यपजी इत्यादी। ये सभी भक्ति और ज्ञान के प्रकाशक थे।

आज हम यहा श्री कश्यपजी का जीवन वृत्तांत का अनुसंधान करने जा रहे है। श्री कश्यपऋषि प्राचीन वैदिक ऋषियों में प्रमुखऋषि है। जिन का उल्लेख एक जगह पर ऋग्वेद में मिलता है। अन्य संहिताओं में भी वह नाम बहु प्रयुक्त है। इन्हें सर्वदा धार्मिक एवं रहस्यात्मक चरित्रवाला बतलाया गया है। एवं अति प्राचीन कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार उन्होने ''विश्वकर्माभौवनं'' नामक राजा का अभिषेक कराया था। ऐतरेय ब्राह्मणों ने कश्यप का संबंध जनमेजय से बतलाया है। शतपथ ब्राह्मण में प्रजापति को कश्यप कहा गया है।

ऋषि कश्यप ब्रह्माजी के मानसपुत्र, मरीची के विध्वान पुत्र थे। मान्यता अनुसार इन्हें अनिष्टनेमी के नाम से भी जाने जाते है। इनकी माता 'कला' कर्दमऋषि की पुत्री और कपिलदेवी की बहन थी।

कश्यप को ऋषि-मुनियों में श्रेष्ठ माना गया है। पुराण अनुसार हम सभी उन्ही की संतान है।

महर्षि कश्यपजी भारतीय धरती के पिता है। (Father of Indian Soil) वे एक अलौकिक विशिष्ट शक्ति थे। उन्होंने अमानवीय गुरु से विद्या प्राप्त की थी। संभव है की कश्यप के गुरु बनने की पात्रता मानव के पास नही होगी। इसलिए अग्निहोत्र-अग्नि के पास बैठकर उन्होंने विद्या प्राप्त किया।

श्री कश्यप महर्षि जयंती (०५.०८.२०१९) के संदर्भ में...

अग्नि से उन्होंने वेदविद्या, यंत्रविद्या और शस्त्र विद्या प्राप्त की। अर्बूद पर्वत को उन्होंने तपस्थली बनाइ। अर्बूद पर्वत पर उन्होंने प्रचंड तप किया। अर्बूद पर्वत के आस-पास के लोगों का जीवन ही बदल दिया। सबको जीने की सही राह दिखाई। उन्होंने ऐसी बर्हिभक्ति के साथ साथ अंतःभक्ति का भी विकास किया।

कश्यपजी लोगों में बहुत प्रिय होने लगा। सभी प्रकार के लोग उन्हें प्रेम करने लगे। बहुत कम समय में उन्होंने विद्या, तेजस्विता, लोकप्रियता, सर्वज्ञान प्राप्त कर लिया।

शास्त्र में कहा है कि प्रभुकार्य करने में किसी तरह की हानी न पहुँचे इसलिये विवाह करना चाहिये। इस सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए उन्होंने दक्ष प्रजापति की कन्या से विवाह किया। दक्ष की जो ६० कन्यायें है इनमें से १० कन्याओं का विवाह धर्म के साथ हुआ, २७ कन्याओं का विवाह चंद्रमा के साथ हुआ, १३ कन्याओं का विवाह कश्यप के साथ हुआ, २ कन्याओं का विवाह भूत के साथ, २ कन्या का विवाह कुशाश्व के साथ, २ कन्याओं का विवाह अंगीरा के साथ और चार कन्या का विवाह ताक्ष्र्य नामधारी कश्यप के साथ हुआ।

कश्यपजी की पत्नियों में अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इजा, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा, तिमि, विनिता, कदु, पर्तागी और यामिनी है।

(१) अदिति :

पुराणों अनुसार पत्नी अदिति के गर्भ से बारह आदित्य को जन्म दिया, जिन में भगवान नारायण का वामन अवतार भी शामिल था।

(२) दिति :

दिति के गर्भ से हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र एवं सिंहिका नामक एक पुत्री को जन्म हुआ। श्रीमद्भागवद् के अनुसार इन तीन संतानों के अलावा दिति के गर्भ से कश्यप के ४९ अन्य पुत्रों का जन्म भी हुआ है। जो कि मरुन्दण कहलाये।

(३) दनु :

दनु के गर्भ से सभी दानव उत्पन्न हुए जिस में द्वीमुर्घा, शम्मर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु, अरुण, अनुतापन, धुमकेश, विरुपाक्ष, दूजर्य, अयोमुख, शंकुशीरा, कपिल, शंकर, एकचक्र, महाबाहु, तारक, महाबल, सवभानु, वृषवर्वा, महाबलीपुलोम और विप्रचिति आदि ६१ महान पुत्रों की प्राप्ति हुई।

(४) अन्य पत्नियाँ :

रानी काष्टा से घोडे आदि एक खूरवाले पशु, पत्नी अरिष्टा से गंधर्व उत्पन्न हुए। सरमा से दातुधान राक्षस, इला से वृक्ष लता आदि पृथ्वी पर उत्पन्न होनेवाली वनस्पतियाँ का जन्म हुआ। मुनि के गर्भ से अप्सरा जन्मी। क्रोधवशा से सांप, बिच्छु आदि विषैल जन्तु उत्पन्न हुए। ताम्रा से बाज, गीध आदि शिकारी पक्षी, सुरभि से भेंस, गाय तथा दो खूरवाले पशुओं उत्पन्न हुआ। रानी सुरमा से बाघ आदि हिंसक प्राणी, तिमि ने जलघर जंतु को जन्म दिया। रानी विनिता के गर्भ से गरुड (विष्णु का वाहन) और वरुण (सूर्य का सारथी) उत्पन्न हुए। कद्रु ने बहुत से नाग

उत्पन्न किए जिन में प्रमुख आठ नाग थे। (अनंत-शेष, वासुकी, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख और कुलिका) रानी पतंगी से पक्षियों का जन्म हुआ। यामीनी के गर्भ से शलभों, पतंगों का जन्म हुआ। इस के अलावा ब्रह्माजी की आज्ञा से प्रजापति कश्यप ने वैश्वानर की दो पुत्रियाँ पुलोम और कालका के साथ भी विवाह किया। उन से पुलोम और कालकेय नाम के साठ हजार रणवीर दानवों का जन्म हुआ जो की कालान्तर में निवात कवच के नाम से विख्यात हुआ।

इस तरह महर्षि कश्यप ने प्रभु कार्य करने के लिए और प्रजोत्पत्ति के लिए ब्रह्माजी की आज्ञा से विवाह करके सभी प्राणियों का पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त किया।

कश्यप ऋषि का लोगों के लिए पथदर्शन

श्री कश्यप ऋषि ने अपना निवास स्थान अर्बूद पर्वत पर ही कर दिया। पर्वत पर आश्रम बनाये आश्रमवासी भी तय किया, सभी आश्रमवासियों को सही शिक्षा दी, प्यार दिया, ज्ञान दिया, ये सब आश्रमवासी, आस-पास के गाँव में जाकर कश्यपजी की आज्ञा के अनुसार ग्रामवासी को जीवन जीने का उद्धेश बताते थे। धर्म संबंधी ज्ञान भी देते थे। जीवन का सही दृष्टिकोण समजाते थे। इस तरह कश्यपजी ने सैकडों देवदूत तैयार किया, जो पूरी सृष्टि में जाकर देवकार्य का मार्गदर्शन करने लगा। कश्यपऋषि ने सैकडों ग्रंथों का

रचना किया, संस्कृत वाङ्मय दर्शनशास्त्र, स्मृतिग्रंथों का अभ्यास किया, कई ग्रंथों पर टीका भी लिखी। इस तरह महर्षि कश्यपजी बर्हिभक्ति के साथ साथ अंतःभक्ति में भी निपुण हुए।

कश्यपऋषि ने परशुराम से पूरी पृथ्वी दान में लेली। कश्यप के हाथ में पृथ्वी आयी। इस के बाद कश्यपजी द्वारा भारत की पुनः रचना (Reconstruction of India) शुरू हुई।

कश्यप ने देखा की पृथ्वी पर से क्षत्रिय नष्ट हो गया। ब्राह्मणों भ्रष्ट हो गया। दैवी ज्ञान खत्म हो गया था, समाज में वैश्य वृत्ति निर्माण हो गई थी। स्वार्थ की बदबू फैली हुई थी। इस विकट परिस्थिति में ऋषि कश्यप ने क्षत्रियों को पुनः निर्मित किया, ब्राह्मण को शास्त्रज्ञान देकर भ्रष्टता दूर की। डुबती हुई पृथ्वी को वैश्य से बचाई। इस तरह भारत की पुनः रचना का प्रचंड कार्य किया। बाद में पृथ्वी को वशिष्ठ सहित ६ ऋषि को सौंप दिया।

अंत में विश्व की सभी शक्तियाँ कश्यप के पैर में जूँकी हुई थी। गंगा तीर पर कश्यपजी प्रवचन दे रहे थे। हाथ में कमंडल, पैर में चाखडी धारण कर कश्यपजी अदृश्य हो गये। माना जाता है कि कश्यप ऋषि के नाम पर ही कश्मीर का प्राचीन नाम था। समूचे कश्मीर पर ऋषि कश्यप और उनके पुत्रों का ही शासन था।

जहाँ भी है हम सब भारतवासी उन्ही की संतान है। तो आइये हमारे पिता कश्यपजी को सादर वंदन कर के हमारी ओर से पितृऋण अदा करे।

कहाँ जाता है कि महर्षि कश्यप का चरित्र जो भी मनन करता है वे सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

जय श्रीमन्नारायण

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति।

'सप्तगिरि', 'स्वर्ण जयंती पत्रिका विशेष' में आलेखों का स्वागत!!

तिरुमल तिरुपति देवस्थान का आध्यात्मिक सचित्र मासिक पत्रिका 'सप्तगिरि' है। कलियुग प्रत्यक्ष दैव श्री वेंकटेश्वर भगवानजी के वैभव एवं तिरुमल क्षेत्र की महानता को हर महीने 'सप्तगिरि' मासिक पत्रिका पाठकों को आलेखों के माध्यम से पहुँचाता है। छः भाषाओं में मुद्रित यह पत्रिका आध्यात्मिक, धार्मिक पत्रिकाओं में विशिष्ट स्थान पायी है।

यह पत्रिका जिज्ञासुओं, महिलाओं व बच्चों... जैसे सभी उम्रवालों के लिए उपयुक्त बनी है। कालप्रवाह में अभिवृद्धि की ओर कदम रखते हुए है। 'सप्तगिरि' मासिक पत्रिका के पाठकों से विनती है कि ''सप्तगिरि पत्रिका को पढ़ने के बाद की अनुभूतियाँ व अनुभव एक लेख के रूप में हमारे कार्यालय में भेजें। उनका परिशीलन करके 'सप्तगिरि' में प्रकाशित किया जाएगा।

आपका लेख अगर डाक से भेजना हो, तो - 'प्रधान संपादक, सप्तगिरि कार्यालय, ति.ति.दे. प्रेस कांपौंड, के.टी.रोड, तिरुपति-५१७ ५०७' के पते पर भेजने का कष्ट करें।

हिन्दी में डी.टी.पी. करके मेइल से भेजने के लिए- पेज मेकर अनु-फांट्स में या एम.एस.वर्ड में युनिकोड फांट में भी टैप करके फैल के साथ पी.डी.एफ. फैल भी hindisapthagiri50years@gmail.com मेइल आई.डी. के द्वारा भेज दें।

वरलक्ष्मी व्रत

- डॉ.बी.ज्योत्स्नादेवी

वरलक्ष्मी, माता लक्ष्मी के ८ स्वरूपों में से एक रूप है। शादीशुदा जोडों के लिए यह व्रत बहुत महत्वपूर्ण बताया जाता है। मान्यता है कि लक्ष्मीजी का यह व्रत उनके अष्टलक्ष्मी पूजन का फल प्रदान करता है। वरलक्ष्मी के अवतरण के बारे में मान्यता है कि क्षीर सागर से माता ने इस रूप में अवतार लिया था और क्षीर सागर में ही भगवान विष्णु का वास माना जाता है। माता वरलक्ष्मी का व्रत और पूजन करने से धन-संपदा की प्राप्ति होती है।

कब करते है वरलक्ष्मी व्रत

वरलक्ष्मी माता का व्रत और पूजन श्रावण मास के शुक्लपक्ष की दशमी को वरलक्ष्मी व्रत मनायी जाती है। श्रावण पूर्णिमा पर जब शुक्र पूर्व में स्थित रहता है वरलक्ष्मी व्रत किया जाता है। वरलक्ष्मी व्रत करने से धन, प्रसिद्धि, शिक्षा, बल, आनंद, पृथ्वी, प्रेम, शांति यानी अष्टलक्ष्मी पूजन के बराबर है।

व्रत-पूजा की विधि

इस दिन सुहागन प्रातः काल उठकर घर की स्वच्छता और स्नान आदि कर लेते है, फिर घर के पूजा स्थल पर रंगोली बनाया जाते है। माता लक्ष्मी की मूर्ति को गंगा जल से मंगल स्नान कराते है और नये कपडे, जेवर और कुंकुम, हल्दी, चंदन से माता को बहुत सुंदर ढंग से सजाते है। इसके बाद एक पाटे पर गणेशजी और माता लक्ष्मी की मूर्ति को पूर्व दिशा में रखे। इसके पास ही कलश स्थापित करे, इस कलश में चावल भरकर रखे। कलश की स्थापना से माँ लक्ष्मी का आवाहन किया जाता है। विविध प्रकार के फलों से भी माता जी को सजाते है। विविध प्रकार के नैवेध्य जो घी से बनाते है माता जी को समर्पित करते है। धूप, दीप, नैवेध्य के साथ वरलक्ष्मी माता की पूजा बडी निष्ठा भक्ति के साथ करनी चाहिए।

तोरग्रंधी पूजा

वरलक्ष्मी व्रत में तोरग्रंधी पूजा का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इस तोरन में नौ धागा होते है। हर एक धागा का अलग-अलग पूजा करना चाहिए। एक-एक तोरन की पूजा इस प्रकार उच्चारण करते हुए करना चाहिए।

वरलक्ष्मी व्रत (०९.०८.२०१९) के संदर्भ में...

कमलायै नमः प्रथम ग्रन्धिम् पूजयामि
रमायै नमः द्वितीय ग्रन्धिम् पूजयामि
लोकमात्रे नमः तृतीय ग्रन्धिम् पूजयामि
सर्वजनन्यै नमः चतुर्थ ग्रन्धिम् पूजयामि
महालक्ष्मै नमः पंचम ग्रन्धिम् पूजयामि
क्षीराब्धितनयायै नमः षष्ठ ग्रन्धिम् पूजयामि
विश्वजनन्यै नमः सप्तम ग्रन्धिम् पूजयामि
चंद्रसोदर्ये नमः अष्टम् ग्रन्धिम् पूजयामि
हरिवल्लभायै नमः नवम ग्रन्धिम् पूजयामि

इस प्रकार तोरन की पूजा करके अपने दाये हाथ पर बाँधना चाहिए। इस दिन व्रत करने वाली नारि लोग उपवास रहते है। यह अनिवार्य नही बल्की अपने सेहद को ध्यान में रखते हुए उपवास रख सकते है और नही भी। कुछ स्त्रीयाँ सुबह व्रत समाप्त होने के बाद आस-पास के सुहागनों को वायन देकर उपवास तोडते है और कुछ स्त्रीयाँ शाम तक रहकर शाम को वायन बाँटकर उपवास तोडते है। शाम को

सभी स्त्रीयाँ एक साथ जमा होकर माता जी की प्रशंसा में भक्ति के गीत गाते है।

वायन देने की विधि

सुबह वरलक्ष्मी माता का व्रत बडी निष्ठा और भक्ति के साथ करने के पश्चात शाम को व्रत रखने वाली औरत आस-पास के स्त्रियों को घर पर आमंत्रित करती है। उन्हे जल पान दे कर उनका स्वागत करती है। सभी स्त्रियाँ माता का दर्शन करके है। व्रत रखने वाली सुहागन अपनी शक्ति के अनुसार प्रसाद का वितरण करती है। उस प्रसाद में साडी, हल्दी का धागा, पान-सुपारी, कंगन, हल्दी-कुंकुम, चंदन, फूल-फल, प्रसाद आदि वायन के रूप में देते है और उनका आशीर्वाद पाते है। वायन देना और वायन को स्वीकार करना दोनों शुभ प्रद है।

वरलक्ष्मी व्रत कथा

पौराणिक कथा अनुसार एक बार मगध राज्य में कुण्डी नामक एक नगर था। कथानुसार कुण्डी नगर का निर्माण स्वर्ग से हुआ था। इस नगर में एक ब्राह्मणी नारी चारुमति अपने परिवार के साथ रहती थी। चारुमति कर्तव्यनिष्ठा नारी थी जो अपने सास, ससुर एवं पति की सेवा करके माँ लक्ष्मीजी की पूजा-अर्चना कर एक आदर्श नारी का जीवन व्यतीत करती थी। एक रात को चारुमति को माँ लक्ष्मी स्वप्न में आकर बोली, चारुमति श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के पहले शुक्रवार को वरलक्ष्मी व्रत को किया करो। इस व्रत के प्रभाव से तुम्हें मनोवांछित फल प्राप्त होगा। अगले दिन अपना स्वप्न वृत्तांत को अन्य स्त्रियों से बताकर श्रावण शुक्रवार के दिन व्रत करने के लिए निश्चय लिया, व्रत के दिन सुबह चारुमति ने माँ लक्ष्मी द्वारा बताये गए वरलक्ष्मी व्रत को समाज के अन्य-नारियों के साथ विधिवत किया। पूजन के संपन्न होने पर सभी नारियाँ कलश की परिक्रमा करने लगी, परिक्रमा करते समय समस्त नारियों के शरीर विभिन्न स्वर्ण आभूषणों से सजा गए। उनके घर भी स्वर्ण के बन गए तथा उनके यहाँ घोडे, हाथी, गाय आदि पशु भी आ गए। सभी नारियों ने चारुमति की प्रशंसा करने लगे। क्योंकि चारुमति ने ही उन सबको इस व्रत विधि के बारे में बतायी थी। कालातंर में यह कथा भगवान शिवजी ने माता पार्वती को कही थी। इस मात्र से लक्ष्मी की कृपा प्राप्त होती है।

इस प्रकार वरलक्ष्मी माता का व्रत निष्ठा, भक्ति के साथ करने से सुख-संपत्ति की प्राप्ति होती है। इस प्रकार वरलक्ष्मी व्रत कथा संपन्न होती है।

वरलक्ष्मीजी की आरती

विष्णु प्रिया सागर सुता महिमा अपरंपार।
सुख संपत्ति धन-धान्य से भर हो माँ भेडार
ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता।

तुमको निशीदन सेवत, हर विष्णु विधाता।
ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता।

उमा, रमा, ब्रह्माणी, तुम ही जग माता।
सूर्य-चन्द्रमा ध्यावत, नारद ऋषि गाता।
ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता।

दुर्गा रूपिणी निरंजनि, सुख-संपत्ति दाता।
जो कोई तुमको ध्यावत - ऋद्धि, सिद्धि द्यान पाता
ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता।

तुम पाताल-निवासिनि, तुम ही शुभ दाता।
कर्म-प्रभाव प्रकाशिनि भवनिधि की गाता
ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता।

जिस घर में तुम रहती, सब सद्गुण आता।
सब संभव हो जाता, जन नही घबराता।
ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता।

तुम बित यज्ञ न होवे, व्रत न कोई पाता।
खान पान का वैभव, सब तुमसे आता।
ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता।

शुभ-गुण मंदिर सुन्दर, क्षीरोदधि जाता।
रतन चतुर्दश तुम बिन, कोई नही पाता।
ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता।

महालक्ष्मीजी की आरती, जो कोई जन गाता।
घर आनन्द समाता, पाप उतर जाता।
ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता।।

भक्तिन तरिगोंडा वेंगमांबा

- डॉ.सी.आदिलक्ष्मी

आंध्र की कवयित्रियों में तरिगोंडा वेंगमांबा अग्रणी हैं। वे विलक्षण प्रतिभा की कवयित्री है। मातृश्री तरिगोंडा वेंगमांबा ने अपना सब कुछ श्रीवेंकटेश्वरस्वामी को समर्पित करके जीवन मुक्ति प्राप्त की है। वेंकटेश्वर की कहानी लोक प्रचलित होते हुए भी वेंगमांबा के द्वारा ही अत्यंत विश्वसनीय बनी है। वेंगमांबा नृसिंहदेव की उपासिका थी। वेंगमांबा बाकी कवि-लेखकों से भिन्न है। भक्तिन मातृश्री तरिगोंडा वेंगमांबा उच्चकुल ब्राह्मण परिवार में पैदा हुई। कानाला वंश के कृष्णयामात्य और मंगमांबा दंपति को आठरहवी सदी के उत्तरार्ध में पैदा हुई। प्राप्त सूचनाओं के अनुसार वेंगमांबा का जन्म सन् १७३० के आस पास हुआ है। उन्होंने सन् १८१७ में सजीव समाधि ली है। वेंगमांबा के पिताजी धार्मिक निष्ठा गरीष्ट आदमी थे। माताजी पतिव्रता नारी थी। श्री वेंकटेश्वर के अनुग्रह से पैदा होने के कारण वेंगमांबा को भक्ति तत्त्व जन्म से ही प्राप्त हुआ। बचपन से ही वेंगमांबा में नरसिंह और श्रीवेंकटेश्वर के प्रति भक्ति का जन्म हुआ था। वेंगमांबा को अपनी माँ से काफी शिक्षा मिली। व्रत पूजा आदि संदर्भों में वेंगमांबा की माँ अनेक गीत और कीर्तन गीत गाया करती थी। इन्ही गीतों एवं कीर्तनों से वेंगमांबा का साहित्यक व्यक्तित्व निर्मित हुआ। भक्ति सेवा और सारस्वत साधना इन तीनों से ही अपने को ढालकर वेंगमांबा सशरीर श्रीवेंकटेश्वर से सानिध्य प्राप्त किया। तरिगोंड वेंगमांबा की सर्वप्रथम कृति 'नृसिंह शतक' है। वेंगमांबा ने इसे तरिगोंडा नृसिंह। दया पयोनिधी टेक पंक्ति या संबोधन के साथ पद्यों में रचा है। इस रचना में कवइत्री ने खासकर अपने भक्तिभाव के साथ-साथ योगाभ्यास समय के अपने अनुभवों को, लोक रीतियों को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया।

श्री तरिगोंडा वेंगमांबा वर्धंती (०९.०८.२०१९) के अवसर पर ....

चूडू महानुभाव! योक
चोद्यपु जीवुड्डु देहकांक्षलन
वीड डवेन्नि चेप्पिन वि
वेकमु गल्गदु एंत मत्तुडो?
रादु दुराशलन विडिच
प्राकुतु भंगिम निंद्रियालतो
गूडेड बायलेदु तरिगोंड नृसिंह! दयापयोनिधी!

अर्थात् विचित्र स्वभाववाला जीव देह पर मोह नहीं छोड पा रहा है।

मातृश्री तरिगोंडा वेंगमांबा का संपूर्ण कृतित्व

(अ) तरिगोंडा में रहते समय लिखित

१. तरिगोंड नृसिंह शतक
२. नारसिंह विलास कथा (यक्षगान)
३. शिव नाटक (यक्षगान नाटक)
४. राजयोगामृत सार (द्विपद काव्य)
५. बालकृष्ण नाटक (यक्षगान)

(आ) तिरुमल में आने के बाद रचित कृतियाँ

६. विष्णु पारिजात (यक्षगान)
७. रमा परिणय द्विपद काव्य विवाह गीत
८. चेंचु नाटक (यक्षगान)

(इ) तिरुमल में तपःसाधनोपरांत रचित कृतियाँ

९. श्रीवेंकटेश्वर कृष्ण मंजरी (मंजरी द्विपद में रचित स्तुति काव्य)
१०. श्री रुक्मिणी नाटक यक्षगान

११. गोपिक नाटक गोल्लकलाप
१२. श्री भागवत
१३. श्रीवेंकटाचल माहात्म्य (६ आश्वासों का पद्य काव्य)
१४. अष्टांग योग सारम्
१५. जलक्रीडा विलासम्
२६. मुक्ति कांता विलासम्
२७. तत्त्वकीर्तन (आध्यात्मिक गीत समय समय पर रचे गए)
२८. वशिष्ट रामायण

नृसिंह विलास कथा - यह एक यक्षगान है। नरसिंह कश्यप का संहार करके प्रह्लाद की रक्षा करने का इतिवृत्त इस यक्षगान में वर्णित है। 'शिव नाटक' वेंगमांबा का दूसरा यक्षगान नाटक है। वेंगमांबा ने इस की कथा को श्रीकृष्ण के पारिजातापहरण के इतिवृत्त के अनुसरण पर ग्रहण करके स्वतंत्र सृजन किया है। 'श्रीवेंकटेश्वर कृष्ण मंजरी' वेंगमांबा की रचनाओं में से यह कृति एक लघु काव्य प्रतीत होता है। कृष्णमंजरी कृति को वेंगमांबा ने वेंकटाचलाधीश के पादपद्मों में स्वयं समर्पित किया था। कृष्ण मंजरी में वेंगमांबा ने श्रीकृष्ण के मुग्धमोहन रूप का नख-शिख वर्णन प्रस्तुत किया। यथा -

तलकोत्तु कुठिल कुंतल युक्त मैन
सललित फालदे शमु जूपु कृष्ण

इस कृति में श्रीमहाविष्णु के विभावतार, निर्गुणब्रह्म आत्मा-परमात्मा का संबंध तथा मुक्ति साधना के तीन मार्ग कर्म-ज्ञान-भक्ति आदि पर वेंगमांबा ने इस कृति में विचार किया। वेंगमांबा कृत अठारह कृतियों में विविधता है। कुछ रचनाएँ प्रबंध काव्य है, कुछ यक्षगान के रूप में, कुछ और पदों के रूप में प्रकट हैं। उनके सारे ग्रंथ नवरस युक्त भक्ति विषयक ग्रंथ है। वेंगमांबा के यक्षगान नाटकों में विष्णुपारिजात श्रेष्ठ माना जाता है। विष्णु ही श्रीकृष्ण के रूप में भक्तों को वरदान देनेवाले पारिजात के रूप में बदलने से ही इस का नाम विष्णु पारिजात रखा गया है। रमा परिणय द्विपद काव्य है और एक विवाह गीत है। यह चार सौ द्विपद छंदों में रचा गया है। श्रीमन्नारायण अपने सास-ससुरों को रिश्तेदारों को वेंकटाद्री पर निमंत्रित करते हैं। श्रीवेंकटेश्वर, रमा को अलिमेलुमंगा नाम से वक्षःस्थल पर धारण करके आनंदनिलय मंदिर में सुखी जीवन बिताने लगते हैं। इस रूप में रमापरिणय की कथा वेंगमांबा के द्वारा कल्पित है। श्री रुक्मिणी नाटक यक्षगान नाटक है। गोपिका नाटक वेदांत विषयक यक्षगान है। गोल्ल कलापमु और गोल्ल कथा इस के अन्य नाम हैं। सुधारक साधक और सारस्वत निर्माता ये तीनों गुण वेंगमांबा को तेलुगु के कवि-कवयित्रियों में विशेष स्थान दिलाते हैं। बचपन से वैष्णव मन्दिरों के साथ रहने से वेंगमांबा में वैष्णव भक्ति का विकास ही हुआ है वेंगमांबा को वेंकटेश्वर, नृसिंह तथा श्रीकृष्ण रूप ही अत्यन्त प्रिय हैं इन तीनों रूपों को वे अभेद मानती हैं। सहज ही साधिका होने

का कारण वे मूलतः वेदान्तवादी रही हैं। अपने दीक्षागुरु श्रीसुब्रह्मण्यम का प्रभाव उन पर विशेष देखा जा सकता है। वेंगमांबा समस्त दर्शनों के सार को सुलभ भाषा में और सुलभ रूप में जन-जन तक पहुँचान की कोशिश उन्होनें की है। वेंगमांबा ने भी अपने संपूर्ण रचना कर्म केलिए तरिगोंडा नृसिहं को जिम्मेदार ठहराया है। अन्यथा अपने असक्त को गा-गाकर सुनाया है। वेंकटाचल माहात्म्य काव्य में उन्होंने स्पष्ट लिखा है -

चेरि तरिगोंड पुर नारसिंहदेवु
दानतिच्चिन रीतिन नेनिमित्त
मात्रमै पल्कुदुन स्वसामर्थ मिप्पु
डरसि चूचिन गानि नायंदु लेदु

वेंगमांबा अपने सम्पपूर्ण रचना कर्म केलिए तरिगोंड नृसिंह देव को ही जिम्मेदार ठहराया है। अपने आराध्य श्रीमहाविष्णु के वास स्थल वैकुंठ का इस संदर्भ में अनेक बार चित्रण किया है। वेंगमांबा के अनुसार परमधाम की प्राप्ति के लिए गुरु सेवा के द्वारा अहं को छोडना आवश्यक है। इस के लिए योगसाधना भी करनी है। प्रणवनाद द्वारा ध्यान-मग्न होकर निज योग साधना करनी है। राज योग सार में वेंगमांबा ने लिखा है -

मनसु सहस्रार मध्य मुंदुंचि
मोनसि तानपुड्ड षण्मुखियनु मुद्द
यंदु जूडंग नंदतं मन्पुट्ट
नंदु लीनमै यधकारंबु!

बंधुरंबै जीव परमात्सुलुकुनु
संधान मोन गूड्ड समयंबु राग
....
परमार्थ मनि दानि भाविंप वलयु!!

वेंगमांबा ने अपने आराध्य देव वेंकटेश्वर की प्राप्ति के लिए श्रीकृष्णमंजरी स्त्रोत काव्य रचकर श्रवण भक्ति के क्षेत्र में नया प्रयोग किया। वेंकटाचल माहात्म्य में वेंगमांबा ने भक्त जनों से यही प्रार्थना की है -

विनरन्नने जूचु वेंकटेश्वरुड्ड
मिन मिन मनि चाल मेरिसेटिदिमो
गट्टिगा तलमीद गदिइंचि दानि
चुट्टु पूरदंडलु चुट्टकुन्नाडु
....
विसुवक वलेवाटुवेसि वेडुकनु

वेंकटेश्वर ने अपने सर पर चमकीदार किरीट धारण करके फूलों की मालाएँ लगायी हैं। इस के

अतिरिक्त वेंगमांबा के यक्षगान 'चेंचु नाटकमु', 'बालकृष्ण नाटकमु' भी कीर्तनकाव्य है। वेंकटाचल माहात्म्य में वेंगमांबा ने वेंकटाचलपति का स्मरण बार-बार किया है। उनके स्मरण से अपने जीवनों को धन्य माना है।

श्री नारायणमात्ममूल मनघं श्रीवत्सवक्षं स्थलं
आना स्थावर जंगमात्मक जगन्नाथं प्रधानाश्रयं
ध्यान ध्येय मचित्यमद्य परं धर्म स्वरूपं संपू
र्णानंद तरिगोंड शेषकु धरा द्यक्षं भजेहं सदा।।

नारायण का नित्य स्मरण करने से संपूर्णानंद मिलता है। नवधा भक्ति में पाद सेवन भक्ति भी एक है। एवं अंतिम भक्ति का प्रकार आत्मनिवेदन है। भक्त के आचरण की शुद्धता का वर्णन करना भी शरणागति का एक गुण है। अपने सभी पाप गुणों का लेख-जोखा भक्त भगवान के सामने प्रस्तुत करता है। इस माया से बाहर निकलना मनुष्य या भक्त के लिए आसान नहीं है। इसमें उसे भगवान की सहायता अवश्य चाहिए। वेंगमांबा भी भगवान श्रीकृष्ण से यही सहायता चाहती हैं। इससे बढ़कर समाज में जीते हुए कुछ मूल्यों का पालन सभी को करना चाहिए। बडों का आदर और छोटों से प्रेम से पेश आना चाहिए। तामसी गुणों के कारण दंभ में पड़कर दूसरों की निन्दा सभी करते रहते हैं। इन दुर्गुणों से भी मुक्त होने के लिए भी भक्त को भगवान की शरण में जाना पड़ता है। वेंगमांबा ने इस आचरण की शुद्धता पर भी जोर दिया है। इसके लिए वे भगवान से प्रार्थना करती हैं इनसे उनकी रक्षा करें। जैसे -

बेरसि नी यन्दुन्न बिरुदु अन्नियुनु
चेकोनि नन्नु रक्षिंप वे कृष्ण
कुल मिलाकर तुझ पर रहीं सारी उपाधियाँ
लेकर मेरी रक्षा करो कृष्ण!

इस रूप में शरणागति में भगवान की महिमा का गायन भी अत्यावश्यक है। वेंगमांबा अपना भार श्रीकृष्ण पर ही छोड़ देती हैं। युवावस्था में वेंगमांबा में वैवाहिक जीवन पर कोई मोह नहीं रहा था। इस चिंता ने वेंगमांबा के माता-पिता को बहुत सताया था। वेंगमांबा को ध्यान आकृष्ट करने केलिए वेंगमांबा के पिताजी कृष्णय्या ने उसका विवाह कर्नूल जिले के इंजेटि वेंकटाचलपति से संपन्न कराया था।

जनुलेल्ल वेंकटाचलपति पाद
वन जयुग्मंबु भावंवु नंदुंचि

दांपत्य जीवन के सुख से दूर होने के कारण चिन्तित होकर वेंगमांबा का पति वेंकटाचलपति कुछ समय बाद ऋग्ण हो जाता है और अकाल मृत्यु को प्राप्त कर लेता है। 'भागवतम्' में इस बात की पुष्टि मिलती है। ''आप मेरे पति नहीं मेरे पति तो परमात्मा श्रीकृष्ण भगवान हैं। यदि तुम हठ करके मेरे को अपवित्र करोगे तो तुम्हारा सिर फूट जाएगा। वेंगमांबा की भक्ति परवशता तथा उसका लौकिक जीवन से विमुखता ने ही वेंगमांबा के जीवन में वैधव्य का कारण बना। वेंगमांबा बाल्यावस्था से ही वेंकटेश्वर स्वामी को अपना पति मानने लगी थी। पति की मृत्यु के उपरांत जन परिवार तथा ग्राम वासियों ने उसके मंगलसूत्र तिलक निकालने की कोशिश की तो वेंगमांबा ने उसका विरोध करते हुए कहा था कि ''मैं भगवान वेंकटेश्वर की पत्नी हूँ। इसलिए यह सुहागिन ही रहूँगी। ऐसा कहकर वेंगमांबा ने उन्हे निकलाने नही दिया। वेंगमांबा कहती है कि ''जो भी विपत्तियाँ मुझ पर गुजरी केवल तुम्हारे कृपा के कारण ही मैं उनसे बचकर जीवित रह सकी। लेकिन सामाजिक यातनाओं ने वेंगमांबा को ग्राम छोडने की बलात शक्ति दी एक बार रातों रात वेंगमांबा तरिगोंडा छोडकर पैदल चलती चलती - तिरुपति पहुंच गयी। तिरुपति के निवासियों के व्यवहार ने तरिगोंडा वेंगमांबा को सहन शक्ति को और

क्षीण कर दिया था। ऐसी हालत में वेंगमांबा तिरुपति छोडकर घने जंगलों से होते हुए तिरुमल पर्वत पहुंच गई। तिरुमल में अपनी महत्ता के कारण वेंगमांबा कुछ समय के लिए निश्चिंत होकर रहने लगी। उसकी प्रतिभा के कारण उसे वेंकटेश्वर मंदिर के ईशान्य कोने में कुटीर बनाकर रहने की अनुमति मिली। वेंगमांबा ने अपने कुटीर के पास तुलसी वन लगा दिया और नित्य-प्रति उसकी सिंचाई करके तुलसी के पत्ते की मालाएँ बनाकर स्वामी के कंठ में समर्पित करने के लिए अर्चना के समय भेजा करती थी। इस समय जब उसका मन शांत रहने लगा वेंगमांबा ने अपनी विद्वत्ता को भक्तिपरक रचनाओं के रूप में प्रदर्शित किया। कुछ समय तक वेंगमांबा का जीवन सुचारु पूर्वक आगे प्रगतिमय रहा था। उसके कष्ट उसे पुनः वापस लौटकर आये जब तरिगोंड के कुछ पुजारियों के तिरुमल पर्वत पर आकर वेंगमांबा के विरोध में कपोल कल्पित कथाएँ फैला दी। वेंगमांबा को अनिवार्य रूप से अपना बृंदावन समान कुटीर को त्यागना पड गया। तभी वेंगमांबा तिरुमल के घने जंगलों में निवास करने लगी। तुंबुरु कोना, पांडवतीर्थ ऐसे जंगली प्रांत है। जहाँ पर घूम-घूम कर वेंगमांबा अपना जीवन यापन करनी लगी थी। वेंगमांबा के यहाँ के जीवन के बारे में किंवदंतियाँ प्रसिद्ध है श्रीवेंकटेश्वर के मंदिर में भगवान को जो नैवेद्य चढाया जाता है उसका आधा हिस्सा नैवेद्य चढाने के तुरंत बाद गायब हो जाता था और गायब हुआ यह प्रसाद तुंबुरु कोने में रहनेवाली वेंगमांबा के कुटीर में पहुँच जाता था। वेंगमांबा उस प्रसाद को गरीबों, भूखों और अपहिजों में बाँट देती थी। वेंगमांबा मूलतः वैष्णव भक्तिन हैं। फिर भी उन्होंने अपनी रचनाओं में शिव भगवान की स्तुति भी की है। खासकर उन का यक्षगान 'शिव नाटक' शिव पर आधारित है। वैसे वेंगमांबा शिव-केशव में अभेद मानती है। शिव और केशव में भेद माननेवालों से उन्होंने स्पष्ट सवाल किया है -

शिवुडंटे नेमि? केशवुडंटे नेमि?
शिव केशवुल चित्त स्थिति भेदमेमि?
आ महादेवुडे अच्युतुडाये,
श्रीमहाविष्णुवे शिवरूपमाये!!

महादेव शिव ही अच्युत है। यह तत्त्व सदा सत्य है। वेंगमांबा मूलतः भक्तिन कवइत्री है। तिरुमल पहुँचते ही वेंगमांबा सीधे मंदिर में श्री वेंकटेश्वर के दर्शन किए। पडिकावली द्वार से उन्होंने श्रीवेंकटेश्वर को नमस्कार किया। दक्षिण माडा वीथी से मंदिर की परिक्रमा करते हुए पुष्करिणी में डुबकी लगाकर सर्वप्रथम वराह स्वामी के दर्शन करके महाद्वार से श्रीस्वामी के सानिध्य में चली गयी करोडों भक्तों के तपः फल से शोभित स्वयंभू अर्चामूर्ति के दर्शन नेत्रानंद रूप में करते हुए इस रूप में प्रार्थना की श्रीनिवास! प्रभु! गोविंदा! आपके सामने आपकी सेवा करते जीने के लिए आयी हूँ! रात के समय हजार खंभेवाले मंडप में स्वामी का ही स्मरण करते हुए वे सो गयी! भोर सुबह स्वामी ने दर्शन देकर कहा - मेरा ध्यान करने के कारण तुझे यहाँ बुलाकर मैं ने दर्शन दिया। इस क्षेत्र में स्थाई रूप में रहना चाहती हो तो अलिमेलुमंगा की अनुमति लेना चाहिए। अलिमेलुमंगा अनुमति का बार-बार स्मरण करते हुए शुचि के साथ सुप्रभात समय में वेंगमांबा स्वामी के दर्शन के लिए गयी। श्रीवेंकटेश्वर को प्रणाम करके वक्षःस्थल पर विराजमान माँ लक्ष्मी की प्रार्थना की। माना जाता है कि उस क्षेत्र में बसने के लिए उन्हें अलमेलुमांगा की ओर से अनुमति मिली है। तदुपरांत वेंगमांबा ने गोगर्भ तीर्थ में तप किया। इसी गुफा में अपने तप को आगे बढाया। अन्नमाचार्य वंशज ने तिरुमल में रहने के लिए वेंगमांबा को एक कुटीर दे दिया। भक्ति सेवा और सारस्वत साधना इस तीनों से ही अपने को ढालकर वेंगमांबा सशरीर श्रीवेंकटेश्वर से सानिध्य प्राप्त किया। अनन्य भक्ति और त्याग के मार्ग से ही वेंगमांबा ने अपने मार्ग को निष्कंटक बनाया।

गायत्री महामंत्र
उसका वैशिष्ट्य

- श्री पी.वी.लक्ष्मीनारायण

भारतीय सांप्रदायिक जगत में मंत्रों का बड़ा महत्व है। मंत्रों में अमृतत्त्व भरा होता है, परातत्त्व की साधना में मंत्रों का काफी योगदान रहता है। मंत्रों में समस्त देवताओं की स्तुति, आवहन, अभ्यर्थना, मंगलमयता आदि अर्थ निबिड़ हुए होते हैं। मंत्र सभी देवभाषा या गीर्वाणभाषा में होते हैं, जो अमरों के आवाहन व अभ्यर्थना में विशेष फलदायी सिद्ध होता है।

हिन्दू धर्म की परंपरागत अर्चना-साधना में मंत्रों का विशेष महत्व रहा है। हमारी-धर्म-साधना के अति प्राचीन तथा सर्वाधिक प्रामाणिक माने जाने वाले वेदों (ऋग, यजु, साम, अथर्वण) में मंत्रों का ही भरमार है।

मंत्रों में प्राणशक्ति, दैविकशक्ति के साथ-साथ लोक-कल्याण की मंगलमय भावनाएँ निहित होती हैं। कहा जाता है कि वेद-मंत्र सिरजनहार ब्रह्मदेव के चारों मुखों में से मुखरित हुए थे।

''मननात् त्रायते इति मंत्रः'' - अर्थात् स्मरण करने मात्र से मनुष्य की रक्षा करने वाला मंत्र होता है। इसी प्रकार मनन मात्र से मनुष्य में तेजोशक्ति, बुद्धिबल में विकास, स्थैर्य, धैर्य आदि बल देकर आदमी को कृतार्थ बनानेवाली शक्ति मंत्रों में होती है। इसी श्रेणी में ''गायत्री'' नामक बीज-मंत्र है, जो हजारों सालों से भारतीय समाज में सर्वाधिक तारक-महिमा का केन्द्र-बिन्दु माना जाता आ रहा है, जिसके मनन से मनुष्य में अपार तेजोबल की वृद्धि के उत्थान का विश्वास किया जाता आ रहा है।

गायत्री जप (१६.०८.२०१९) के संदर्भ में...

गायत्री महामंत्र

नान्नोदक समं दानं, न द्वादश्या परं व्रतम्।
न गायत्र्याः परं मंत्रं, न मातुः पर दैवतम्।।

जलदान के सरीखा दान नहीं, द्वादशीव्रत के समान व्रत नहीं, माँ के समान देवता नहीं और - ''गायत्रीमंत्र'' के समान शक्तिमान् मंत्र नहीं।

गायत्री इतना विशिष्ट मंत्र है।

यह अधिकांश पंडितों का सर्व मान्य मत है कि गायत्री महामंत्र को पुराण प्रसिद्ध तत्ववेत्ता तथा ब्रह्मर्षि ''विश्वामित्र'' ने प्रकट किया था। अनंतर काल में यह महामंत्र ऋग्वेद में संपुटीकृत किया गया था।

ओं भूर्भुवस्सुवः तत्सवितुर्वरेण्यम्।
भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।। (ऋग्वेद)

यह है गायत्री महामंत्र।

गायत्री महामंत्र का भावार्थ

गायत्री महामंत्र २४ अक्षरों से गुँथा हुआ है। इस महामंत्र के सभी चौबीसों अक्षर बीजाक्षर हैं। बीजाक्षर का मतलब हैं घोष-ध्वनि से युक्त अक्षर हैं, जिनमें इस समस्त ब्रह्मांड भांड की गतिशक्ति व प्राणशक्ति निहित होती है।

गायत्री महामंत्र में अपने सूर्य मंडल में सर्व व्यापित तेजोरश्मि का आवाहन सिद्ध किया गया है। इसके सभी चौबीस अक्षरों में सौर-चेतना भरी हुई है। जिसके पठन से साधक में विश्वचेतना की सिद्धि होयेगी।

''इन भूलोक, भुवर्लोक, सुवर्लोक, महर्लोकादि सात ऊर्ध्व लोकों में - स्थावर, जंगम प्राणियों में-

बुद्धि नामक चेतना-संपदा का आवेश महान् कांति-पुंज के अधिनायक, वह ''सवित्'' नामक महोदय के अलावा कोई नहीं प्रचालित कर रहा है। - यह है गायत्री महामंत्र का स्वाभाविक अर्थ।

इस सातों ऊर्ध्व लोकों के प्राणियों में बुद्धि-रूपी संचालन सवित्वरेण्य अर्थात् सूर्य भगवान ही कर रहा है। और कोई इस सवित्वरेण्य के समानवाला शक्तिमान नहीं है, जो इन सातों लोकों के प्राणियों में चेतना या जागरूकता भरता हो। सूर्यभगवान के अलावा इन सातों लोकों के प्राणियों में बुद्धि का प्रसार करने वाला कोई महानुभाव नहीं है। इन समस्त प्राणियों के शक्ति-पुंज के अधिनेता एक मात्र सूर्य भगवान है। यह रूढ़ है।

गायत्री महामंत्र की विशेषताएँ

गायत्री महामंत्र के मूल भाव को समझना काफी कठिन है। यह मंत्रराज सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसमें केवल अर्थ का इशारा व संकेत मात्र है। मूलार्थ का स्पष्ट आकार इसमें आपको गोचरित नहीं होगा।

गायत्री महामंत्र एक व्याख्या (Caption) है।

अतएव इस मंत्र-रूपी व्याख्या को, जिस व्याख्या का संपुटीकरण सिद्धयोगी विश्वामित्र ने हजारों साल पहले किया था, अनंतर काल में अनेकों तत्त्ववेत्ताओं ने सफल तथा सानुकूल विपुलीकरण में बदलने का प्रयास किया था। ऐसे भावार्थ के प्रदाताओं में श्रीमदादिशंकर भगवत्पाद अग्रगण्य माने जाते हैं। आदिशंकराचार्यजी ने सर्वप्रथम गायत्रीमहामंत्र का महाभाष्य रचा था, जो काफी हद तक प्रामाणिक माना जाता हुआ रहा है।

गायत्री देवी

''गायनात् त्रायते इति गायत्री''

वही गायत्री है, जिसके गायन से हमें इस सांसारिक दुःखों से रक्षा मिल सकती है।

गायत्री छंद एक अमूल्य श्लोक-विधा है, जिसे ब्रह्मर्षी विश्वामित्र महोदय ने सर्व प्रथम गुँथाया था। उन दिनों में यह छंद-विधान अत्यंत जनादरण पाया हुआ था और कविलोग बहुधा गायत्री-छंद में रचना करते थे या अपनी कृतियों को लिपिबद्ध करते थे।

गायत्री-छंद की प्रचुरता व लोक-प्रियता को ले करके श्रीमद्भगवद्गीता में गीताकार ने स्वयं बताया है- ''गायत्री छंदसा महम्'' - अर्थात् ''मैं स्वयं गायत्री-छंद हूँ।'' गायत्री-छंद इतना पवित्र समझा जा रहा था कि स्वयं भगवान ने अपने को गायत्री-छंद बताया है। अतः ऐसे परम पुनीत छंद में इतने महान् काव्यार्थ रूपी सवित्वरेण्य की प्रार्थना-अर्चना के भावार्थ का प्रणयन किया गया था।

गायत्रीदेवी का कहीं आवास नहीं है, यथा पार्वतीदेवी का कैलास और लक्ष्मीदेवी का वैकुंठ। गायत्री महादेवी का आवास गायत्री महामंत्र में ही है। जब भी सही ढंग से गायत्री महामंत्र का पठन होता है, गायत्री महादेवी का उसी जगह में आविर्भाव हो जाता है। गायत्री महादेवी का रूप-वैभव कुछ इस प्रकार का होता है-

"शार्दूलविक्रीडितम्-मुक्ता विद्रुम हेम नील धवलच्छायैर्मुखै स्त्री क्षणै
युंक्तामिंदुनिबद्ध रत्नमकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयांकुश कशाश्शुभ्रंकपालं गदाम्।
शंखं चक्र मथारविंदयुगलम् हस्तैर्वहंतीं - भजे"

माता पाँच मुखों वाली सर्वश्रेष्ठ स्त्री रूपिणी है। मैया के पाँचों मुख पाँच विभिन्न तथा विलक्षण वर्णों से युत होते हैं। यों तो ये वर्ण व रंग साधारण नहीं हैं, वरना ये रहस्यमयी तत्त्वों के प्रतीक होते हैं।

१. मुक्ता व मोती का रंग आत्मा की कला का सूचक होता है।

२. विद्रुम - मूँगा का रंग। यह जीवन की सफलता या धनिकता का संकेत है।

३. हेम - सुनहरा। हेमवर्ण श्रेष्ठता और प्रमुखता को सूचित करता है।

४. नील - नीला रंग ऊँचाई, अधिकता, असीमता और बडप्पन का द्योतक है।

५. धवल - श्वेत या सफेद रंग। स्वच्छता, मेधा अथवा चेतना का चिह्न है।

गायत्री माता के पाँचों मुखों के ये वर्ण जीवन की सर्वश्रेष्ठ साधना के संकल्प के मूलभाव के द्योतक होते हैं।

देवी माँ ने रत्न मणि जड़ित किरीट का धारण किया हुआ है और उस नवरतन किरीट पर इन्द्र रेखा को निबद्ध किया हुआ है, अर्थात्, गायत्री माँ के मुकुट से चाँद को चिप काया है, जो मुकुट से लगे रह कर माँ की हर दृष्टि से चाँदनी छिट काता हुआ विराजमान है। इस दिव्य दृश्य का यह मतलब होता है कि माँ की कृपा-दृष्टि स्वच्छ चाँदिनी की आभा के समान है। वह चाँदिनी भी पूर्ण प्रकाश की भड़क-सी न होते हुए एक रेखामात्र-सी होती है, जिसे साधारण मनुष्य व साधक या भक्त सह सकता है। माता की कृपा रेखामात्र है, जो समस्त संपदाओं को प्रदान कर सकता है। माँ के वैभव में रेखामात्र चन्द्रमा को निबद्ध रखने का यही संकेत है। माँ की कृपा लघु होते हुए अलघु होती है।

गायत्री माता वरदायी मायी की मुद्रा में आसीन है। वह अभय की भंगिमा का भी आभास देती है। माँ के सन्निधान में वरदान की आकांक्षा या आशा का आभास होता है और साथ ही साथ निर्भीति की शरण का भी आस्वासन मिलता है।

माँ सर्वशक्ति समुद्भासिता और समस्त प्रज्ञाकारिणी अथवा समर्थ प्रज्ञाधारिणी भी है। गायत्रीमाता के दस भुजाएँ हैं, जिन्हों ने - अपने दो दाएँ, बाएँ हाथों में कमल के फूलों का धाराण किया हुआ है। एक हाथ में शंख और एक में चक्र धरा है। एक हस्त में गदा, एक में कपाल (भिक्षापात्र) और एक-एक हाथ में अंकुश तथा चाबुक धरा हुआ है। इन आयुधों का अपना-अपना प्रयोजन बताया हुआ है। अंकुश का मतलब इच्छाओं पर नियंत्रण और चाबुक धरने का रहस्य - इस लोभपूर्ण संसार की गति में त्वरण लाने के प्रयास पर जोर दिया जाता है।

गायत्री महामंत्र के स्मरण से उपरोक्त देवी का आत्मा में साक्षात्कार हो जाने पर, उस महादेवी के रूप-वैभव का इस प्रकार स्तोत्र किया जाता है।

गायत्री मंत्र की अपप्रदा

गायत्री महामंत्र के जप करने से साधक के शरीर या मस्तिष्क में सूर्यभगवान (सवित् भगवान) का अपार चेतना शक्ति भर जाती है। उस मनुष्य की चेतना शक्ति का विस्तार हो जाता है और वह मनुष्य या साधक अपने जीवन का विजेता बन जाने की संभावना होती है। पुराने जमाने में इसके उदाहरण के तौर पर कई गायत्री-उपासक निकल आ चुके थे।

इस विषय को ले करके हमारे बुजुर्गों ने इस महामंत्र को गुप्त रख दिया। जिस किसी को इस महामंत्र के उपदेश अथवा उपासना पर उन्होंने पाबंदी लगा दी थी। उपनयन के संदर्भ में, केवल पिता अपने पुत्र के काम में ही गायत्री महामंत्र का उपदेश करता था। बालक को सिर्फ मनन करके ही इस मंत्र को याद करता था। किसी भी हालत में उसे किसी पर किसी साधन से लिखना मना था। और, स्त्रियों को गायत्रीमंत्र के जपको सख्त मना था। आज भी गायत्री को जोर से उच्चरित करना मना है। उसे मन में ही साधक को मनन करना चाहिए। 'मननात् त्रायते इति गायत्री'।

लेकिन आज समय बदल गया है। लोगों में क्रांतिकारी विचारों का संचार है।

आज गायत्री जप की दिशा बदल गयी है। आज स्त्री-पुरुष कोई भी स्वेच्छा से इस महामंत्र को मनन कर सकता है। हर कोई इसका अनुष्ठान बना कर लब्ध-प्रतिष्ठित बन सकता है। शास्त्रों की गहराइयों में गायत्री महामंत्र पर पाबंदी का कोई सबूत नहीं दिखाई देता है।

समापन

गायत्री महामंत्र २४ पूर्ण अक्षरों से बना हुआ है। एक-एक अक्षर का एक-एक अधिदेवता का स्थापन किया हुआ है। यह शुद्ध गायत्रीमहामंत्रराज सामान्य साधक का अंतिम बोध-गम्य साधन बन कर निकला है।

वेदों ने भारतीयों को चार महावाक्य दिये हुए हैं- १. तत्वमसि-उपदेश महावाक्य २. अहं ब्रह्मास्मि-अनुभव महावाक्य ३. प्रज्ञानं ब्रह्मा - निर्देश महावाक्य ४. अयमात्मा ब्रह्मा-निरूपण महावाक्य। इसी परंपरा में गायत्री महामंत्र ने भी एक महावाक्य को भारतीय तत्त्वचिंतकों को प्रसादित किया है। "धियो यो नः प्रचोदयात्"। धियो यो नः प्रचोदयात् एक साधन महावाक्य हो सकता है। - इसका तात्पर्य है- "हम सबके बुद्धि-बल का संचालन वही महोदय कर रहा है।"

आज सारी दुनिया प्रभु श्रीवेंकटेश भगवान के चरणों तले शरण लेने को दिन में एक लाख के हिसाब से तिरुमलगिरि पर चली आ रही है। और बुद्धिजीवी मनुष्य अपने बुद्धिबल के विकास के लिए "गायत्री महामंत्र" का आश्रय ले रहा है। ये दोनों स्तुतिपात्र आचरण हैं। अस्तु।

'मानव सेवा ही... माधव सेवा'

आर्ष धर्म में बताया गया है।
सह प्राणियों को किसी भी तरह रक्षा की जाय, तो अनंत पुण्यफल हमें और हमारे परिवार को मिलेगा। कलियुग वैकुण्ठ के भगवान का आवास स्थान तिरुमल में रक्तदान करना परम पवित्र कार्य है।
आपके रक्त से अन्य व्यक्ति का प्राण बचता है।

तिरुमल में रक्तदान कीजिए।

तिरुमल अश्विनी अस्पताल में प्रतिदिन सुबह 8 बजे से लेकर दोपहर 12 बजे के अंदर कोई भी रक्तदान कर सकता है।

दूरभाष - 0877-2263601

आइये... रक्तदान कीजिए!
संकटग्रस्त व्यक्ति को सहायता कीजिए!!

(गतांक से)

श्री रामानुज नूट्रन्दादि

मूल - श्रीरंगामृत कवि विरचित | प्रेषक - श्री श्रीराम मालपाणी

आक्कि यडिमै निलैप्पित्तनै येन्नैयिन्नु, अवमे
पोक्कि प्पुरत्तिट्ट देन्पोरुळा मुन्बु, पुण्णियर्तम्
वाक्कि प्पिरिया विरामानुज निन्नरुळिन् वण्णम्
नोक्किन् तेरिवरिदाल्, उरैया यिन्द नुण्पोरुळे॥(३८)

सुकृतिनां वाचि सततं विराजमान रामानुज! चिरादवस्तुभूतं मामधुना वस्तूकृत्य शेषत्वे प्रतिष्ठापितवानसि। इदानीमेवं परमकृपाप्रदर्शकेन भक्ता सोऽयं जनश्चिरं पुरा विषयान्तरेषु निपात्य विषादितः खलु; कुतस्तत्? तत्त्वमिह कथ्यतां तावत् भवत्कृपाप्रकारस्सत्यं दुरवधरः॥

हे भाग्यवानों की वाणी में नित्यनिवास करनेवाले श्री रामानुजस्वामिन्! (अनादिकाल से अहंकारी रहे हुए) मुझको आपने आज ही अपना शेष बना दिया। (इस प्रकार हाल में मुझपर कृपा बरसानेवाले) आप क्योंकर इतने दिनों तक मुझको विषयांतरसंग में ही छोड रखा? विचार करके देखने पर आपकी कृपा का प्रकार सत्य ही समझने में अशक्य है। आप ही कृपा करके इसका रहस्य समझाइए। (विवरण- अनादि काल से विषयांतरों का ही अनुभव करते हुए संसारसागर में मग्न रहनेवाले मुझको आज अकारण ही श्रीरामानुजस्वामीजी ने सद्बुद्धि देकर अपना दास बना दिया। धन्य है आपकी निर्हेतुक कृपा!)

अनादिकाल से विषयांतर का अनुभव करते हुये संसारसागर में मग्न रहनेवाले जीवों को सद्बुद्धि देकर श्रीरामानुजस्वामीजी अपना दास बनाते हैं।

(क्रमशः)

तिरुमल तिरुपति देवस्थान
तिरुमल
श्रीहरि के पवित्रोत्सव
११-०८-२०१९
से
१३-०८-२०१९
तक

तिरुमल श्रीहरि को २०१९ जून १४ से १६ तक वैभवपूर्ण रीति से समर्पित ज्येष्ठाभिषेक के पावन दृश्य

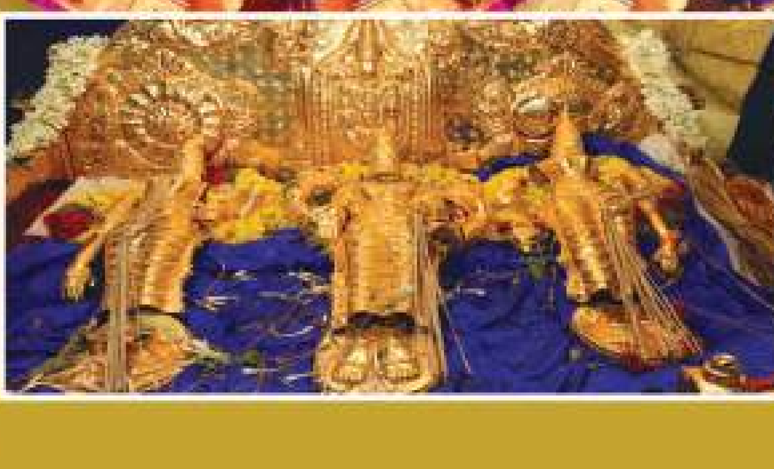

श्रीनिवासमंगापुरम् श्री कल्याणवेंकटेश्वर स्वामी के मंदिर में ति.ति.दे. ने बालालय, अष्टबंधन तथा महासंप्रोक्षण का आयोजन २०११ जून १२ से १६ तक किया।

उभयदेवेरियों के संग श्री कल्याणवेंकटेश्वर स्वामी का स्नपनतिरुमंजन

मरवकल के साथ कूटकर अष्टबंधन लेहा की तैयारी का दृश्य

ति.ति.दे. के अर्चकवृंद के द्वारा पवित्र जल को ले जाना, साथ में ति.ति.दे. के कार्यनिर्वहणाधिकारी

महाशांति अभिषेक

श्री कल्याणवेंकटेश्वर स्वामी के गर्भालय शिखर पर महासंप्रोक्षण का कार्यक्रम

महापूर्णाहुति

अप्पलायगुंटा में दि. १३-०६-२०१९ से दि. २१-०६-२०१९ तक श्री प्रसन्नवेंकटेश्वर स्वामी के ब्रह्मोत्सव मनाये गये।

ध्वजारोहण

मोतीवितानवाहन पर उभयदेवेरियों के संग श्री प्रसन्नवेंकटेश्वर स्वामी

कल्पवृक्षवाहन पर उभयदेवेरियों के साथ श्री प्रसन्नवेंकटेश्वर स्वामी

सर्वभूपालवाहन पर श्री प्रसन्नवेंकटेश्वर स्वामी

हंसवाहन पर श्री प्रसन्नवेंकटेश्वर स्वामी

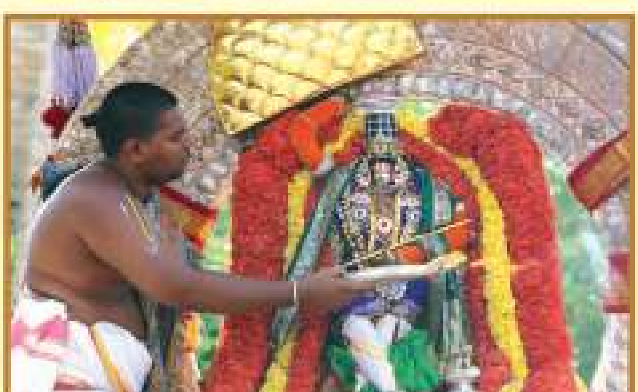

सूर्यप्रभावाहन पर श्री प्रसन्नवेंकटेश्वर स्वामी

अप्पलायगुंटा की पुरवीधियों में श्री प्रसन्नवेंकटेश्वर स्वामी का रथोत्सव

ज्ञानानंदमयं देवं निर्मलस्फटिकाकृतिम्।
आधारं सर्व विद्यानां हयग्रीवमुपास्महे।।

हमारे पुराणों के अनुसार ब्रह्म, विष्णु और महेश्वर निरंतर सृष्टि, स्थिति और लय कारक माने जाते हैं। ब्रह्म सृष्टि की रचना करता है तो शिव सृष्टि का लय। भगवान विष्णु स्थिति कारक अर्थात् सृष्टि का ठहराव और अस्तित्व का रक्षक है। स्थिति कारक होने के कारण भगवान विष्णु को समय-समय पर सृष्टि की रक्षा के साथ-साथ दुर्जनों से सज्जनों को बचाने हेतु बार-बार विभिन्न योनियों में अवतरित होना पड़ा। भक्तगण ज्यादातर भगवान विष्णु के दशावतारों की चर्चा ही करते हैं लेकिन भगवान के कई ऐसे अवतार भी हैं जो दशावतार जैसे ही महत्वपूर्ण हैं। वेदों की रक्षा करने हेतु विष्णु भगवान ने 'हयग्रीव' अवतार का धारण किया। 'हय' यानी घोड़ा, 'ग्रीव' यानी गर्दन अर्थात् 'हयग्रीव' का अर्थ है - घोड़े का मुँहवाला।

श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन अवतरित हुआ 'हयग्रीव' का वर्णन देवी भागवत, स्कंद पुराण और श्रीमद्भागवत में मिलता है।

योगासना समासीनम वेदशास्त्र समन्वितम्।
सर्व वेदांततत्त्वज्ञम् हयग्रीवमुपास्महे।।

हयग्रीव अवतार के बारे में दो-तीन कहानियाँ बहुत प्रचलित हैं।

सृष्टि रचना करनेवाला ब्रह्म जब एक बार ध्यान मग्न था, तब मधु-कैटभ नामक राक्षस चारों वेदों का अपहरण करके पाताललोक जाकर उन्हें वहाँ छिपा दिए। वेदों के बिना सृष्टिकार्य कैसे होगा? इसलिए ब्रह्म ने जाकर विष्णु से प्रार्थना की। तुरंत भगवान विष्णु हयग्रीव का अवतार धारण कर मधु-कैटभों को ढूँढते हुए पाताल-लोक पहुँचा। लेकिन वहाँ उसे मधु-कैटभ दिखाई नहीं दिए तो उन्हें बाहर लाने के उद्देश्य से विष्णु ने सामवेद का गान किया। उस गान को सुनते ही मधु-कैटभ आश्चर्य चकित होकर उसके

श्री हयग्रीव जयंती (१५.०८.२०१९) के संदर्भ में...

श्री हयग्रीव अवतार

- डॉ.के.एम.भवानी

बारे में जानने के लिए बाहर आए। तब विष्णु ने उनसे युद्ध करके, उनका संहार करके वेदों को लाकर फिर ब्रह्म को दिया। भागवत के अनुसार हयग्रीव के नाक से निकलनेवाली साँस से वेदों का जनम हुआ था। इसीलिए भगवान 'हयग्रीव', 'वेदसंरक्षक', 'वेदमय' है।

एक और कथन के अनुसार, एक बार हयग्रीव (घोड़े का मुँहवाला) नामक राक्षस भगवती लक्ष्मी के लिए हजारों साल तप किया। लक्ष्मी उससे प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। तब हयग्रीव ने अमरत्व का वर माँगा तो देवी ने यह नमुमकिन कहा तो हयग्रीव ने यह वर माँगा कि जो उसीके जैसे होगा उसीके हाथों से उसको मृत्यु प्राप्त होना है। देवी

ने 'तथास्तु' कहा। वर गर्व से हयग्रीव सारे ब्रह्मांड में ऊधम मचाने लगा। देवताओं को सताने के साथ-साथ वह ब्रह्म के पास जाकर उससे वेदों का हरण किया। तब विष्णु ने हयग्रीव का रूप धारण कर उसका वध करके वेदों की रक्षा की।

एक और कथन इस प्रकार है - एक बार भगवान विष्णु हजारों साल तक असुरों से युद्ध करने के बाद बहुत थक कर अपने धनुष की प्रत्यंचा को आधार बनाकर सो गया। सारे देव गण विष्णु को ढूँढते हुए आए और देखा कि विष्णु गहरी नींद में थे। ब्रह्म और शिव भी उसे उठाने का साहस न कर सका। आखिर शिव ने ही सलाह दी कि धनुष की प्रत्यंचा को काटने पर सर हिलकर विष्णु जाग जाएगा। तब ब्रह्म ने वम्री (दीमक) नामक कीड़े को पैदा करके उसे विष्णु के धनुष की प्रत्यंचा काटने का आदेश दिया तो वम्री ने ऐसा ही किया मगर धनुष की प्रत्यंचा कटते ही वह चढ़ा हुआ रहने के कारण बाण लगकर विष्णु का सर कट गया। सारे देव गण स्तब्ध रह गए। आखिर उन्होंने माँ भगवती की प्रार्थना करके उपाय पूछा। माँ ने उनकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर कहा कि हय का सर लाकर विष्णु के धड़ से जोडने पर वह जिंदा हो जाएगा। देवताओं ने ऐसा ही किया तो विष्णु 'हयग्रीव' हो गया।

श्वेतवर्णम् चतुर्बाहुम् वैजयंती विराजितम्।
सर्वाभरण संयुक्तं हयग्रीवमुपास्महे।।

श्रावण मास की पूर्णिमा, श्रवणा नक्षत्र के दिन हयग्रीव अवतार का आविर्भाव होने के कारण उस दिन को हयग्रीव जयंती मनाते हैं। उस दिन वेदों का अध्ययन शुरू करना महत्वपूर्ण माना जाता है। माना जाता है कि हयग्रीव को इलायची बहुत पसंद है इसलिए हयग्रीव भगवान को इलायची माला पहनाने पर विद्यार्थी पढ़ाई में अग्रसर होते हैं।

मेधां, प्रज्ञां, बलां, विद्यां, संपदं, पुत्र पौत्रकम्।
देहि मे देव देवेश हयशीर्ष नमोस्तुते।

हयग्रीव व्रत

श्रवणा नक्षत्र के दिन हयग्रीव का अनुग्रह के लिए नमक रहित खाना खाना है। हयग्रीव जयंती के दिन स्वामी की आराधना करने के साथ-साथ उसे उबले हुए चने, कुलथी आदि का भोग चढ़ाना है। इसे ही हयग्रीव व्रत कहते है। हयग्रीव की पूजा करनेवालों की वाक्-शक्ति, विद्या-शक्ति और बुद्धि का विकास होता है।

हयग्रीव की मूर्ति

अपने जाँघ पर लक्ष्मी को बिठाकर, सफेद कमल पर बैठकर, सफेद रंग से, चार भुजाओं से, एक में शंख, एक में चक्र, एक में पुस्तकों का धारण कर और एक में माला, अश्व मुँह, मानव शरीर से उज्वलित होते हुए स्वामी दिखाई देता है। भारत देश के कई राष्ट्रों में हयग्रीव का मंदिर है। कलियुग का वैकुंठ समझा जानेवाला तिरुमल में भी हयग्रीव का मंदिर देखने को मिलता है।

मणिपीठ समासीनं मकुटोज्वल मंडितम्।
मुक्ताहाराधरं देवं हयग्रीवमुपास्महे।।
हयाननं हयग्रीवं हार नूपुर शोभितम्।
पीतांबर धरं देवं हयग्रीवमुपास्महे।।

श्री लक्ष्मीहयग्रीवाय नमः

श्रीकृष्ण जन्मपर्व "जन्माष्टमी"

- श्रीमती प्रीति ज्योतीन्द्र अजवालिया

श्रावण कृष्णपक्ष अष्टमी याने के जन्माष्टमी पर्व। भगवान श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव। श्रीहरि विष्णु के दश अवतारों में से आठवाँ अवतार भगवान श्रीकृष्ण ने लिया। भगवान श्रीहरि का अवतारों में से भगवान श्रीकृष्ण को छोडकर बाकी सब अवतार एकमुखी है। श्रीकृष्ण अवतार बहुविध स्वरूपी है। जन्म अवतारों में भगवान श्रीकृष्ण का स्थान सर्वोपरी रहा है। द्वापर युग के नायक भगवान श्रीकृष्ण ने अपने काल में बहुत ही यश पाया है। अपनी यश गाथाओं में चार चाँद लगा दिया है।

द्वापर युग के अन्त का समय था। पाँच हजार वर्ष से कुछ और पहले की बात है। मथुरा के राजा उग्रसेन का बड़ा पुत्र कंस अपने चाचा देवकजी की सबसे छोटी पुत्री देवकी को विवाह के बाद पहुँचाने जा रहा था। देवकी का विवाह वसुदेवजी के साथ हुआ था। मार्ग में आकाशवाणी ने कंस से कहा - ''देवकी का आठवाँ पुत्र तुझे मारेगा।'' यह सुनते ही कंस तलवार लेकर देवकी को मारने के लिये तैयार हो गया, लेकिन वसुदेवजी ने उसे यह वचन दिया के देवकी को जो भी सन्तान होगी उसे उत्पन्न होते ही वे कंस को दे दिया करेंगे।

वसुदेवजी की बात का विश्वास करके कंस ने देवकी को छोड दिया और लौटकर अपने पिता उग्रसेनजी को उसने कैद कर लिया और स्वयं मथुरा का राजा बन बैठा। जब देवकी के पहले पुत्र हुआ, तब उसे वसुदेवजी कंस के पास ले गये। कंस ने पहले तो उसे लौटा दिया, लेकिन पीछे नारदजी ने उसे समझाया कि देवकी का कोई पुत्र अन्त या बीच से गिनने पर आठवाँ कहाँ जा सकता है। इससे कंस ने उस पुत्र को पटक कर मार दिया। वसुदेव देवकी को उसने कारागार में डाल दिया।

श्रीकृष्णाष्टमी (२३.०८.२०१९) के संदर्भ में...

देवकी का जो भी पुत्र होता था, उसे कंस मार दिया करता था। इस प्रकार छः पुत्र उसने मार डाले। देवकी के सातवें गर्भ में अनन्त भगवान (शेष) आये। कंस के भय से वसुदेवजी की शेष सभी रानियाँ मथुरा छोड़कर जहाँ-तहाँ चली गयी थी। उनमें से रोहिणीजी गोकुल में जाकर ब्रजराज नन्दजी के यहाँ रहती थी। भगवान की आज्ञा से योगमाया ने देवकी के सातवें गर्भ को खींचकर रोहिणीजी के पेट में स्थापित कर दिया।

श्रावण कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि थी, बुधवार दिन था और रोहिणी नक्षत्र था। ठीक आधी रात को, जब कि पूर्व दिशा में चन्द्रमा उदय होने जा रहे थे, कंस के कारागार में वसुदेव-देवकी के सामने भगवान प्रकट हो गये। शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये चतुर्भुजरूप से मुकुट, कुण्डल आदि आभूषण पहिने भगवान प्रकट हुए थे। भगवान के तेज से कारागार की अंधेरी कोठरी में प्रकाश छा गया। देवकी-वसुदेव हाथ जोड़कर भगवान की स्तुति की।

माता देवकी ने प्रार्थना करते हुए भगवान से कहा कि आप बालक बन जायें। इसलिये भगवान ने साधारण नवजात शिशुका-सा रूप धारण कर लिया। वसुदेवजी को भगवान ने आज्ञा दे दी थी कि 'मुझे गोकुल में नन्दजी के घर पहुँचा दो और वहाँ यशोदाजी को जो आज ही कन्या हुई है, वह मेरी योगमाया है, उसे यहाँ ले आओ।'

वसुदेवजी गोकुल पहुँचे। वे सीधे नन्दभवन पहुँच गये। वहाँ भीतर जाकर उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण को यशोदाजी के पलँग पर उनके पास सुला दिया और यशोदाजी की कन्या को उठाकर वे चुप-चाप लौट पड़े।

श्रीकुष्ण-जन्म का महोत्सव बड़ी धूम से गोकुल में हो रहा था। समय भी अच्छी तरह से पसार होने लगा।

एक दिन माता यशोदा अपने प्यारे पुत्र को गोद में लिये बैठी थी और बड़े प्रेम से श्रीकृष्ण चन्द्र का सुन्दर मुख देख रही थी। अचानक श्यामसुन्दर के मुख खोल गयी। उनके खुले हुए मुख में माता को समुद्र, नदियाँ, पर्वत आदि पूरा भूमण्डल, सूर्य, चन्द्र, तारे तथा ब्रह्म आदि देवताओं के लोक दिखायी पड़े। मैया आश्चर्य में पड़ गयी। उन्होंने समझ लिया कि जिन्हें मैं पुत्र मानती हूँ, वे साक्षात् भगवान हैं। लेकिन श्रीकृष्ण चन्द्र उसी समय हँस पड़े। उनकी योगमाया ने माता का भाव बदल दिया। फिर वे पुत्र भाव से ही श्याम को प्यार करने लगी।

महर्षि गर्ग वसुदेवजी के और ज्योतिष-शास्त्र के आचार्य थे। वसुदेवजी के कहने से वे गोकुल आये। नन्दबाबा ने उनकी पूजा की। सत्कार करके उनसे प्रार्थना की कि श्रीरोहिणीजी के पुत्र तथा यशोदाकुमार का भी नामकरण - संस्कार कर दें। गर्गजी ने कहा - मैं यादवों का आचार्य हूँ। मैं बालकों का नामकरण करे, तो कंस समझ लेगा कि वे दोनों बालक वसुदेव के हैं, क्योंकि आपकी वसुदेवजी से मित्रता हैं। दुष्ट कंस बालकों का प्राण लेने पर उतारु हो जायेगा। गर्गमुनि की बात सुनकर नन्दजी ने प्रार्थना की कि बालकों का नामकरण बिना किसी समारोह के गुप्तरूप से महर्षि कर दें। श्री नन्दजी की प्रार्थना स्वीकार करके महर्षि गर्ग ने नामकरण संस्कार किया। उन्होंने गोरे रंग के श्री रोहिणी नन्दन का नाम 'राम' रखा जो पीछे बलराम कहे जाने लगे। उनका एक दूसरा नाम 'संकर्षण' भी गर्गजी ने ही बता दिया था। नवीन जलभरे मेघ के समान साँवले श्री यशोदाकुमार का नाम गर्गजी ने 'कृष्ण' रखा।

अब तो बाल कृष्ण पलने लगा और नटखट भी होने लगा। अपने बाल्य काल में नीत-नविनबाल्य लीलायें की।

अपने बाल्यकाल में कंस प्रेरित अनेक असुरों का संहार किया। जिस में पूतना वध, शकटभंजन, तृणावर्तत्राण, बकासुर वध, व्योमासुर वध, वत्सासुर वध, अघासुर वध प्रमुख है। इस के अलावा कइ सारे लीलाये भी की। जिस में विश्वरूप दर्शन - माखनचोरी, माटीउगलाना, रूठनलीला, सखा की सेवा, उखल बंधन, यमलार्जुन उद्धार, फलविक्रय स्त्री को स्वर्ण देना... इत्यादी बहुत प्रचलित है।

भगवान श्रीकृष्ण की लीला बड़ी ही मीठी, उपदेशभरी और सबके जीवन में नया उत्साह, नयी-नयी पवित्रता भरनेवाली और बालकों के लिये तो बहुत ही आनन्ददायिनी है। छोटे-छोटे बच्चे भगवान श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं का ज्ञान प्राप्त कर लें और बोलचाल की भाषा में लीला की तुकबंदी याद कर लें तो वे सहज ही श्रीकृष्ण के जीवन से परिचित हो जाते हैं और पदों को बोलकर तथा दूसरों को सुनाकर आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

जय श्रीकृष्ण

गोदादेवी जन्मनक्षत्रोत्सव!
गोविंद को समर्पित पुरिशै वंशस्थों का उद्यानोत्सव!!

तेलुगु मूल - श्रीमती एम.उत्तर फल्गुनी
हिन्दी अनुवादक - श्रीमती पी.सुजाता

''कर्कटं पूर्वफल्गुन्यां तुलसी काननोद्भवाम्
पांड्ये विश्वंभरां गोदां वंदे श्रीरंगनायकीम्।।''

पांड्यदेश में श्रीविष्णुचित्तों के तुलसी-वन में आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी मंगलवार के दिन पूर्वफल्गुनी नक्षत्र युक्त तुलालग्न में, भूदेवी के अंश से श्री आंडलदेवी (गोदादेवी) का आविर्भाव हुआ था। इसीलिए कटकमाह के पूर्वफल्गुनी नक्षत्र में शात्तुमोरा (मुहूरत का निर्णय) का निर्वाह कर, उस दिन के दस दिनों से उत्सव मनाते हुए पूर्वफल्गुनी के दिन पर शात्तुमोरा तिरुपति के देवस्थान में संपन्न होता है। इसीको तिरुवाडिप्पूरम् शात्तुमोरा नाम रखा गया है।

तिरुवाडिप्पूरम् का नेपथ्य

वराहपूराण में श्रीवेंकटाचल के माहात्म्य के अध्याय में अष्टोत्तर शत नामों के अध्याय में ''गोविंदाय नमस्तुभ्यं श्रीनिवासायते नमः'' कहते हुए श्री वेंकटाचलपति की, श्री गोविंदराजस्वामी में एकता दर्शित होना बताया गया है।

कट्टियम्-यादवराजाओं के पालन करते समय में श्रीभगवद्रामानुजाचार्यजी की मौजूदगी है। उस जमाने में चिदंबरम् के गोविंदराजस्वामी किसी कारणवश कावेरीनदी के तट पर स्थित श्रीचित्रकूट नामक पुराण-प्रसिद्ध दिव्य क्षेत्र तज कर तिरुमल अडिवार में स्थित तिरुपति नामक दिव्य नगर पहुँचा था। यहाँ श्रीवेंकटेश्वर का अवतार बनकर देवताओं की आराधना पाने लगा है। उस समय श्री भाष्यकारजी ने श्री गोविंदराजस्वामी को तिरुमल श्री वेंकटेश भगवान के सरीखा समस्त ऐश्वर्य बिना किसी भेदभाव या अंतर के अनुभवित करने जैसा बनाना चाहा। उसी परंपरा के प्रयत्न के भाग में आल्वारों की पुत्रिका आंडाल के बाएँ हस्त में कमल के फूल के धरे जैसा बना कर, दिव्य ऐश्वर्य की अभिवृद्धि के कारणभूत व्यूहलक्ष्मी के लिए आवश्यक यंत्र और मंत्रों की धारणादियों को दिव्य सिंघासन पर खुदवाया था। श्री गोविंदराजस्वामी को वामभाग में वैखानस आगम के प्रकार प्रतिष्ठित कर, समस्त उत्सवों की पाये - जैसा संकल्पित कर दिया था।

उसी अंदाज में श्री गोदादेवी के दिव्य अवतार के समय के श्री पूर्वफल्गुनी वाले नक्षत्र के माह में श्री गोदादेवी को श्री गोविन्दराजस्वामी से जता कर, तिरुमल के अडिवार में 'अडिपुलि' (अलिपिरि) मंडप में स्वयं व्यक्त श्रीवेंकटाचलपति के दिव्य पादारविंदों में प्रतिष्ठित किया है।

पुरिशै वंशस्थों का उद्यानोत्सव

तिरुवाडिप्पूरं शात्तुमोरा के दिन पर ही तिरुमल श्रीवारु पुरिशैवालों के बाग में पधारते हैं। इस कटकमाह के पूर्वफल्गुनी नक्षत्र के दिन के सायंकाल, श्री मलयप्पस्वामीजी-एक काठ की तिरुच्ची में पधारे महाप्रदक्षिणा के तौर पर पुरिशैवालों के उद्यान में आ बसते हैं। वहाँ तलिहाओं (एक विशेष प्रसाद) के निवेदन के पश्चात् गोष्ठी-विनियोग चलेगा। फिर श्री स्वामीजी निकल कर मौलसिरी पेड के यहाँ आते ही उनकी आरती उतार कर, उस शेष-आरती, फूलमाला, श्रीशठारी उस मौलसिरी पेड पर टँगाते हैं। अर्चक उस शठरी को तिरुच्ची में न रखे, अलग से ले आते हैं। श्री स्वामीजी गजेन्द्रमोक्ष मंडप पार कर गली में पहुँचते ही श्रीवारि की आरती उतार कर, श्रीशठारी का प्रोक्षण-रूप में अभिषेक किया जाता है। फिर से श्रीस्वामी की आरती उतार कर, श्री शठारी को तिरुच्ची में रखते हैं। अनंतर श्रीनिवास भगवान क्रम ढंग से सन्निधि में पहुँच जाते हैं। यह है - तिरुमल में संपन्न होने वाला - पुरिशैवालों का उद्यानोत्सव!!

इस प्रकार उद्यानोत्सव कब चला और कैसे चला बताते हुए कुछ शासन इस विधि से ज्ञात कराते हैं - आइयें उन पर एक नजर चलाएँ।

शासनों में उद्यानोत्सव

तिरुमल में १९८३ सितंबर-२३वीं तारीख पर हुए उद्यानोत्सव पुनरुद्धरित उत्सव था। यह पहले से चलता हुआ आ रहा था, किसी जमाने से, मगर, बीच में कभी रोक दिया गया था।

तोट-तिरुनाल, तोपु-तिरुनाल नामों से व्यवहरित यह उत्सव पहले पहल सालुव नरसिंह (विजयनगर के राजा) के हयाम में (संपुटि-२, शासन ११३) १४९४वें साल में फरवरी-१७वीं तारीख पर के शासन में दिखाई देता है। चन्द्रगिरि के निवासी, हारीत-गोत्र, अश्वलायन सूत्र-नियोगि तिम्मना दंडनायक के इस शासन में उद्यानोत्सव २० दिन चले जैसा दर्ज किया हुआ है। उत्सव के प्रारंभित ग्यारहवें दिन पर तिम्मनादंडनायक श्रीवारी के कैंकर्य का आयोजन किया हुआ-सा बताया गया है।

श्रीकृष्णदेवराय के जमाने के याने १५४२वें साल, सितंबर-१५वीं तारीख के शासन में (संपुटि-३, शासन-२८) तिरुपति नगरी के समीप के नरसिंगापुर के निवासी पंडयारु शेन्नमुशेट्टियार के पुत्र पप्पुशेट्टि अय्यन तिरुपति श्री गोविंदराजस्वामी, तिरुमल के श्रीवारु अपने बाग के मंडपों में पधारे समय, तिरुमल-तिरुपतियों में संपन्न होने वाले मर्यादाओं (सन्मानों) को अलग-अलग तौर पर बताया हुआ है। शासनों में दर्ज किया हुआ यह दूसरा उद्यानोत्सव है!!

उन दिनों के विजयनगर के पराक्रमीराजा अच्युतदेवराय के जमाने में ई. के १५३६ मार्च ६वीं तारीख पर के शासन में (संपुटि-४) शासन-७३) श्री पराशरभट्टाचार्य का चेला मट्ल मल्लय्यन् का कुमार रामय्यन् रामभट्ट उद्यानोत्सव, रामचन्द्र दीक्षित उद्यानोत्सव - अप्पापिल्लै उद्यानोत्सवों के लिए उभय-प्रदान किया हुआ विषय है। संपुट-४, शासन-१८ में जय्यपुनायकर उद्यानोत्सव, १९वें शासन में कुमारपल्ली से संबन्धित कट्ला कांडमनायकर के पुत्र मूर्तिनायकर उद्यानोत्सव, सदाशिवनायकर जमाने से संबन्धित १५५४ वे

साल अगस्त - ७वीं तारीख का शासन उद्यानोत्सव से संबन्धित एक ही एक संपूर्ण शासन है।

इसमे उद्यानोत्सवों के चलाने का विधान, श्री मलयप्पस्वामी को, उभय नांचारियों (श्रीदेवी-भूदेवी) को, कृष्णस्वामी को, विष्वक्सेन जी को, भाष्यकारों को चलाने वाले उभय, मर्यादयाएँ समर्पित किये जाने वाले प्रसाद, प्रसादेतर कैंकयों के अन्य विषयों का विवरणात्मक वर्णन किया हुआ पाया जाता है। इस उत्सव के खर्चों के लिए मूर्तिनायकर, राजेन्द्रसिंगनल्लूर में ५० सुवर्ण रेखैपन, पुदिपट्‌ला के २५ रेखैपन, इनमें उद्यानोत्सवों को निभाने का क्रम, कुलमिलाकर ७५ रेखैपन वाली आमदनी देनेवाली जमीन खरीद कर तिरुमल श्रीभाण्डार में समर्पित कर दिया है। उस शासन में यह भी सविस्तार बताया गया है कि किस-किस विषय पर कितना खर्चा किया जाना चाहिए। मूर्तिनायकर के द्वारा खरीद किये जाकर, फसल किये जाने वाले फूलबाग में निमित मंडप में श्रीवेंकटेशजी भगवान, उभय नांचारी, श्रीकृष्ण, सेनाधिपति विष्वक्सेन, भाष्यकार श्रीरामानुजस्वामी - ताल्लपाका तिरुमलय्या जी द्वारा प्रायोजित आणि ब्रह्मोत्सवों (जून-जुलाई) के अंकुरार्पण के दिन श्रवणा-नक्षत्र-युक्त मुहूरत पर आसीन होते हैं। तदुपरांत, पुनुगु-चंदन आदियों से उनका तिरुमंजन होता है, जिसके पश्चात् उन्हें अलंकार, नैवेद्य, आरती, शठारी देने का कार्यक्रम आज भी निर्विराम तथा निर्विघ्न ढंग से संपन्न होता हुआ चला आ रहा है!!

उद्यानोत्सव के नाम पर यह उत्सव संपन्न होना आखिरीबार राजा वेंकटपतिराज के जमाने में १६०६वें साल मार्च ३१वीं तारीख पर ०६-१३वें शासन में दरस सकते हैं। विजयनगर के कोशाधिपति बोक्कसं कृष्णय्या ने अपने पिता बोक्कसं नरसय्या के नाम पर हुए फूलबाग के मंड़प पर चलाया था, मगर, वह पश्चात् के नव्वबों के जमाने में, कंपनेवालों के पालन में या महंतों के आध्वर्य में संपन्न होने के कोई दाखिले नहीं मिलते। लगभग ४०० सालों के पश्चात् १९८३वें साल में ही उद्यानोत्सव संपन्न हुए थे!!

उद्यानोत्सव के उसी नाम पर न संपन्न होने पर भी, तिरुमल के श्रीस्वामीजी तिरुमल दिव्यक्षेत्र में स्थित कुछ मुख्य प्रदेशों का दर्शन करना, वनभोजन की तरह के सभी संपन्न उत्सव उद्यानोत्सवों के अन्दर ही आयेंगे। इसी परंपरा में स्वामी के पुरिशैवालों के उद्यान में पधारने में किये जाने वाले उत्सव को ही पुरिशैवालों का उद्यानोत्सव नाम है। यह उत्सव १५२७वें साल के तिरुमल के पत्थर मंडप में ही किया जाता है। गोदादेवी के जनमदिन पर ही अनंताल्वार का स्वर्गवासी दिन भी पडता है। अतः उस दिन पुरिशैवालों का उद्यानोत्सव मना दिया जाता हुआ आ रहा है। उसी दिन आंडाल तिरुवाडिप्पूरं उत्सव को भी मनाते हैं। इसी सिलसिले में अनंताल्वार के फूलबाग की भी कुछ जानकारी लें।

अनंताल्वार और उनकी पत्नी दोनों मिल कर कठिनतर व्यय-प्रयासों को झेलकर निर्मित ''रामानुज पुष्पवाटिका'' में किस्म किस्म के रंग बिरंगे पुष्पों को पैदा करते थे। हर रोज उस पुष्पवाटिका से चुन-चुन कर सेकरित व गुँथे फूलों से मालाएँ बना कर, श्रीस्वामीजी के मंदिर में समर्पित किया करते आ रहे थे। उन पुष्पमालाओं को अत्यंत प्रीत भरे हृदय से स्वीकार कर श्रीवेंकटेश भगवान आपादमस्तक धारण कर आनंदनिलय में अपने प्रियभक्तों को सानंद, सालंकृत दर्शन देकर उन्हें तृप्त करता था। भगवान बालाजी-गोविन्द अचंभे चमक के साथ लोगों को आनंदित बनाता था!!

ऐसे संपन्न होते हुए तरुण में संतोषित सप्तगिरीश भगवान ने अपने शरीर पर अलंकृत उन रंग-बिरंगे मनोहारी पुष्पों की सुगन्ध व सुंदरता परख कर, सिर्फ ये मालाएँ इतने रमणीय हो लुभाते रहे हैं, तो इन फूलों को उगानेवाले अनंताल्वार की पुष्पवाटिका की रमणीयता क्या ही सुन्दर होगी!! ऐसा समझ कर भगवान बालाजी ने उस पुष्पोद्यान की शोभा देखना चाहा। रात के एकांत समय में जब पुजारी सब सोने के कपाट को बंद करके आनंदनिलय छोड़ चले जाने पर, मूल-विराट में अपनी दोनों देवेरियों-श्रीदेवी, भूदेवी - को साथ ले करके अनंताल्वार की फूलबनी में विचरने गये। वाह, उस पुष्पवन की सुन्दरता, उसकी बेजोड़ कलाकृति देख कर पारवश्य में डूब गये। खेल कूद कर, गा-बजा कर विचर कर उत्सव सा मनाया!!

ऐसा रात-भर भगवान तिरुमलाधीश ने अपनी पत्नियों के संग अनंताल्वार की बागिया में आनंदोत्सव मना कर, सब बगियन को, फूल-पत्तों को उखाड़ खेल कर, प्रातःकालिन सेवा में शरीख होने के लिए जल्दी-जल्दी आनंदनिलय में पहुँचे!!

सुबह होते ही फूलों के सेकरण के लिए उद्यान में प्रवेशित अनंताल्वार-दंपतियों का काम तमाम हो गया था। उनकी साँस मानो रुक गयी। हरा-भरा फूलों की बगिया टूटे-फूटे पौधों व डालियों से मानो संशान नजर आ रही था। सर्वत्र टूटी डालियों, फूल गुच्छों से नष्ट भ्रष्ट दिखाई दे रही थी। उस तरह सत्यनाश हुए अपने फूलों के बगीचे को नष्ट पहुँचाने वालों पर अनंताल्वार का गुस्सा अंबर छू गया था।

पर, क्या हो सकता था? दिनभर अनंताल्वार परिश्रम करके बगियन को सँवारता और सुबह आकरके देखने पर बाग ज्यों त्यों नाश हुआ पड़ा रहता था। आखिर अनंताल्वार ने निश्चय कर लिया था कि कैसा भी करके उन अल्हड फकीरों को पकड़ लिया जाय, जो अपने आराध्य वेंकटेश भगवान की सेवा-कैंकर्य के लिए उद्देशित फूल-बगियन बिगाड़ डालने पर तुले हुए हैं!!

रात को झाड़ की आड़ में छुप कर अनंताल्वार बैठ कर दोनों चोरों को पकड़ लिया। मगर, स्वामी ने तो अनंताल्वार को धक्का देकर भाग खड़ा हुआ, लेकिन अंबा-जगद्रक्षकी माता पकड़ी गयी। आल्वार ने अम्मा को एक चंपा के पेड़ से बाँध दिया था। माता को छुड़ा जाने भगवान बालाजी आया! अनंताल्वार उसे पकड़ने उसके पीछे पड़ गया। उसे भगाते-भगाते आनंदनिलय की दक्षिणमाड़ा वीथी में गया; वहाँ जाते-जाते स्वामी अदृश्यमान् हो गया। आल्वार बालाजी को ढूँढते ढूँढते थक गया और अपनी कुटी पहुँच गया!

इतने में सुबह हो गयी। पौ फटा! पुजारी बाबाओं ने सोने के कपाट खोलकर, बालाजी को मंगल स्तोत्रों से जगाया। पुजारी लोगों ने देखा कि श्रीस्वामी के वक्षस्थल पर अलमेलुमंगा की सोने की प्रतिभा दिखाई नहीं दी, तो उनके होश-हवाश उड़ गये!

तब अचंभे ढंग से श्रीवेंकटेश भगवान की मूल अर्चा-प्रतिभा बोली, ‘‘हे पुजारी लोगो! आप इस तरह धबराइये नहीं! अलमेलुमंगा रात को अनंताल्वार के

फूल-बाग में पकडी जाकर बंदी बना दी गयी है! आप लोग वहाँ जा करके जगज्ञननी को बाइज़्ज़त लेके आना!!''

यह सुन करके पुजारीभाई दंग रह गये और सबके सब माताजी को लिवालाने तत्काल अनंताल्वार के फूल बगीचे में दौड़ पड़े!! अनंताल्वार एक बेंत हाथ में लिए वही बैठा हुआ था, जहाँ मैया - अलमेलुमंगा बंदिनी बना कर है! इस तरह आनंदनिलय के सब पुजारीगण और अधिकारियों के अस्तव्यस्त और अंधाधुंध अपने बगीचे में भागते आना देख कर अनंताल्वार सकपका गया!!

पुजारी अनंताल्वार के निकट पहुँच कर बोले, ''क्या ही भाग्यशाली हो, अनंत!! तू ने तो जगज्ञननी, परमेश्वरी अलर्मेल्मंगतायार को ही अपने बाग में बंदी बन कर रखा है?!!''

अनंताल्वार ने झट अपना किया हुआ अक्षम्य अपराध को भाँप लिया और झट देवी माँ के पादपद्मों पर गिर कर अपने किये दोष को माफ करने को माँगा, क्योंकि वह अनजाने में किया हुआ था!!

माँ परमेश्वरी मुस्कुरायी और अनंत से कहा, ''अनंत! यह तो तेरा पुराकृत सुकृति थी कि तू मुझे बंदी बना सके! खैर, अब मुझे आनंदनिलय ले चल!!

अनंताल्वार ने अपने सगी-संबन्धियों, पुजारी, अधिकारी और बाजा बजंत्रियों के साज-सज्ञा लेकर कोलाहल ढंग से माई अलमेलुमंगा को एक टोकरी में फूलों पर असीन कर, अपने सिर पर ढोते हुए आनंद-मंदिर में प्रवेश किया, तो जगत कल्याणकारी बालाजी भगवान अनंत की अगवानी में मंदिर के बाहर आकर, उस जुलूस को मंदिर में लेगया!!

अंदर पहुँचने के पश्चात् श्री वेंकटेश ने अनंताल्वार से कहा, ''हे मामा! तुमने अपनी पुत्री अलमेलुमंगा को इस तरह फूल की टोकरी में लाकर मुझे समर्पित करके मेरा कन्यादाता बनकर, मेरा ससुर बने हुए हो!! अस्तु!!''

तब सबके देखते-देखते फूल की टोकरी में हुई अलमेलुमंगतायर श्रीनिवास के वक्षस्थल पर चढ़ कर, यथारूपी स्वर्ण-प्रतिमा बनी रही!! उस मंगलमय घटना के अवसर पर श्री वेंकटेश परमात्मा ने अपने खसुर अनंताल्वार का - वस्त्र, आभूषण, चंदन, तांबूल आदि मंगल द्रव्यों से खूब सत्करित किया! सबने जय-जय नाद किया!!

ऐसे हर साल आडिमास (कर्काटकमाह) में पूर्वफल्गुनी नक्षत्र के तिरुवाइपूरं'' वाले उत्सव के दिन श्रीस्वामीजी श्रीदेवी-भूदेवियों से मिल कर, मंदिर के प्रदक्षिण के तौर पर सवार चलाते हुए उद्यान में पधार कर यथाप्रकार पूजा-आरती पाने के उपरांत फूलमालाओं, शठारी के साथ अनंतार्यजी के बृन्दावन के मौलसिरी पेड़ को सत्करित करने के पश्चात् प्रदक्षिणा के तौर पर सवार होते हुए मंदिर प्रवेश कर जाते हैं!! बुजुर्गों का कहना है - इसी दिन अनंताल्वार का स्वर्गवास हुआ था और मौलसिरी पेड के रूप में अनंताल्वार ने ही जनम लिया हुआ है!! यह भी बात हम विशेष तौर पर कह सकते हैं कि यही दिन श्री आंडलतायार गोदादेवी जनमदिन ''तिरुवाडिप्पूरम्'' है!!

समस्त सन्मंगलानिसंतु!

(गतांक से)

सियाराम ही उपाय

शरणागति मीमांसा

(पंचम खण्ड)

सियाराम ही उपेय

मूल लेखक
श्री सीतारामाचार्य स्वामीजी, अयोध्या

प्रेषक
दास कमलकिशोर हि तापडिया

८८

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीरंगपट्टन वाले सेठी धनीरामजी ब्रह्ममुहूर्त में याने जब दो घड़ी रात रही तब जगे। जगते ही उनके गुरुदेव जो थे उनका ध्यान किये। बाद अस्मद्गुरुभ्यो नमः, अस्मद्परम गुरुभ्यो नमः, अस्मद्सर्वगुरुभ्यो नमः, स्पष्ट उच्चारण किए। बाद एक ही श्लोक में अपनी सारी गुरु परम्परा का अनुसन्धान किये। आसन ही पर पड़े-पड़े श्री देवराज गुरु का मानसिक पूजन किये। उस वक्त तन्मय हो गये। बाद स्वरूप उपाय पुरुषार्थ का चिन्तन करने लगे। इस चेतन का स्वरूप क्या है। इसका कुछ देर विचार किये वो ये है कि यह चेतन और किसी का नहीं होता हुआ सिर्फ एक श्रीपति का ही दास है। खरा इस जीवात्मा का यही स्वरूप है। संस्कृत में इसको अनन्यार्ह शेषत्व कहते हैं। इसका वही पूर्वोक्त अर्थ है। यही इसका प्रधान स्वरूप है। इस बात से जिस वक्त यह चेतन विचलित होगा उसका उस वक्त मानो स्वरूप ही नष्ट हो गया। याने अपना सर्वस्व नाश कर चुका। इससे महान मुमुक्षु धनीरामजी अपने मन को शिक्षा देने लगे कि हे मन! अनादि से तुम्हारा समय विपरीत ज्ञान में ही बीता है, अब तुम्हें होश में आ जाना चाहिये। जो तुम्हारा स्वरूप है उस पर भली भाँति परिस्थिति करके शेष समय बिताना चाहिये। तुम्हारा स्वरूप अनन्यार्ह शेष है। इसका भाव ये है कि सब शास्त्रों का आखिरी निश्चय यही है कि यह जीव एक श्रीकान्त का ही दास है। इतर किसी देवतान्तरों का नहीं। बस इस बात को भलीभाँति समझ कर इसी पर सदा के लिये तुम्हें परिस्थिति करके रहना चाहिए। यदि श्री कान्त के अतिरिक्त दूसरे देवतान्तरों का भूल करके भी दास बनोगे तो तुम्हारा स्वरूप नष्ट हो जायगा और ज्ञानियों में फिर तुम नहीं गिने जावोगे। क्योंकि सच्चे मुमुक्षुओं से और देवतान्तरों से तो कुछ सम्बन्ध ही नहीं है। श्रियःकान्त के अतिरिक्त इतर देवताओं में तो वे लोग पड़ते हैं जिन्हें स्वरूपज्ञान नहीं है। मुमुक्षुओं का जिन लोगों ने सहवास नहीं किया, जिन लोगों को अर्थपञ्चक का ज्ञान नहीं है। जो लोग क्षणिक अनित्य नाशवान पदार्थों को ही अपना भोग्य मान रखे हैं। चौदह लोक और चौदह लोकों का सुख क्षणिक है और नाशवान है। इसमें पड़ने से आवागमन चक्र बन्द नहीं होता है। अनन्य होकर भगवान के शरण होकर उनके अनुग्रह से संसार चक्र से छूटकर परमपद में जाकर भगवान की नित्य सेवा मिले बिना यह आत्मा न आज तक सुखी हुआ है और न कभी सुखी होने की सम्भावान ही है। पहिले तुम सुन ही चुके हो कि चौदह लोक आवागमन की विभूति है। परमपद में जाकर भगवान की प्राप्ति बिना इस जीव का आवागमन कभी छूटता ही नहीं है। हे मन? इन पूर्वोक्त बातों का जिन जीवों को परिज्ञान नहीं है वे ही लोग देवतान्तरों में प्रवृत होते हैं। और स्वरूप ज्ञान नहीं होने के कारण नित्य अनित्य का विवेक नहीं होने से देवतान्तरों के द्वारा अनित्य चीजों की चाहना करते हैं। खरे मुमुक्षुओं का तो शास्त्रों से निर्णय किया हुआ यह अटल सिद्धान्त है कि सुख-दुःख को देने वाला न तो कोई देवता है, न ग्रह है, न काल है, न कोई चेतन है। जब प्रारब्ध अनुकूल होता है तो सब अनुकूल हो जाते हैं और जब प्रारब्ध प्रतिकूल होता है तो मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। चेतन को यह भलीभाँति समझ कर रहना चाहिए। जो सत्संग रहित सामान्य अधिकारी हैं वे ही सुख और दुःख के कारण देवों को तथा ग्रहों को और कालादि को समझते हैं। परन्तु जो उच्च कोटि के सत्संग किये हुए सच्चे मुमुक्षु हैं उन लोगों का तो बारम्बार यही कहना है जो तुम्हें मैं पहिले ही कह चुका हूँ। श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध में एक मुमुक्षु की कथा है

कि उनके स्वरूप को नहीं समझने वाले आसुरी प्रकृति के मनुष्य उन्हें बहुत सताते थे। कोई उन पर थूक देता था, कोई मूत्र कर देता था। इस प्रकार अनेक भांति से उन्हें सताया करते थे। वह महात्मा किसी से कुछ न कह कर मौन होकर अपने आये हुए प्रारब्ध भोग को शान्ति तथा धीरता पूर्वक भोगते हुए अपना समय बिताते थे। एक रोज इस तरह लोगों के सताने पर भी उनकी तरफ बिल्कुल न ख्याल करके शान्ति पूर्वक परमात्मा के स्मरण में बैठे हुए उस महात्मा को देखकर किसी ने पूछा कि महाराज! आपका कैसा गजब हृदय है और धैर्य है और आप में कैसी आश्चर्यजनक शान्ति है कि आप के ऊपर इतना उपद्रव दुर्जनों के जरिये हो रहा है, परन्तु इस बात को आप बिल्कुल मन में नहीं ले रहे हैं। न तो शान्ति और धैर्य को जरा भी छोड़ रहे हैं। यह क्या है? वह महात्मा बोले कि भाई! वास्तव में ये लोग हमें दुःख पहुँचाने वाले नहीं हैं। न किसी देवता तथा ग्रहों के द्वारा सुख-दुःख होता है। बात तो यथार्थ यह है कि प्रारब्ध अनुकूल होने से सब अनुकूल होते हैं और प्रारब्ध प्रतिकूल होने से प्रिय बन्धु वर्ग भी प्रतिकूल हो जाता है। इस प्रकार सद्गुरु के परम अनुग्रह से जिन मुमुक्षु चेतनों को यह बात समझ आ चुकी है। वे लोग कभी दूसरों को दोष लगाते ही नहीं। इस प्रकार जिन्हें परिज्ञान रहता है उनकी शान्ति भंग कभी भी नहीं होती। यह सुख-दुःख मानना तो बस एक मन के ऊपर है। अपने मन से जिसको शत्रु कल्पना कर लिये उसको स्मरण कर-कर सत्संग हीन बेसमझ लोग उद्वेग और ईर्ष्या वैर में पड़े रहते हैं और जिसको मन में मित्र कल्पना कर लिए उसका उपकार मानने लगते हैं। परन्तु चिरकाल सत्संग किये हुए उच्च कोटि के मुमुक्षु लोग तो कभी किसी पर दोषारोपण करते ही नहीं। (क्रमशः)

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति।

लेखक लेखिकाओं से निवेदन

सप्तगिरि पत्रिका में प्रकाशन के लिए लेख, कविता, रचनाओं को भेजनेवाले महोदय निम्नलिखित विषयों पर ध्यान दें।

१. लेख, कविता, रचना, अध्यात्म, दैव मंदिर, भक्ति साहित्य विषयों से संबंधित हों।

२. कागज के एक ही ओर लिखना होगा। अक्षरों को स्पष्ट व साफ लिखिए या टैप करके मूलप्रति डाक या ई-मेइल (hindisubeditor@gmail.com) से भेजें।

३. किसी विशिष्ट त्यौहार से संबंधित रचनायें प्रकाशन के लिए ३ महीने के पहले ही हमारे कार्यालय में पहुँचा दें।

४. रचना के साथ लेखक धृवीकरण पत्र भी भेजना जरूरी है। 'यह रचना मौलिक है तथा किसी अन्य पत्रिका में मुद्रित नहीं है।'

५. रचनाओं को मुद्रित करने का अंतिम निर्णय प्रधान संपादक कार्य होगा। इसके बारे में कोई उत्तर प्रत्युत्तर नहीं किया जा सकता है।

६. मुद्रित रचना के लिए परिश्रमिक (Remuneration) भेजा जाता है। इसके लिए लेखक-लेखिकाएँ अपना बैंक प्रथम पृष्ठ जिराक्स (Bank name, Account number, IFSC Code) रचना के साथ जोड करके भेजना अनिवार्य है।

७. धारावाहिक लेखों (Serial article) का भी प्रकाशन किया जाता है। अपनी रचनाओं का भेजनेवाला पता- **प्रधान संपादक,**
सप्तगिरि कार्यालय,
ति.ति.दे.प्रेस कांपौन्ड, के.टी.रोड,
तिरुपति – ५१७ ५०७. चित्तूर जिला।

राजा पृथु एक शक्तिशाली अवतार

तेलुगु मूल - डॉ.वैष्णवांघ्रि सेवक दास

हिन्दी अनुवाद - श्री अमोघ गौराँग दास

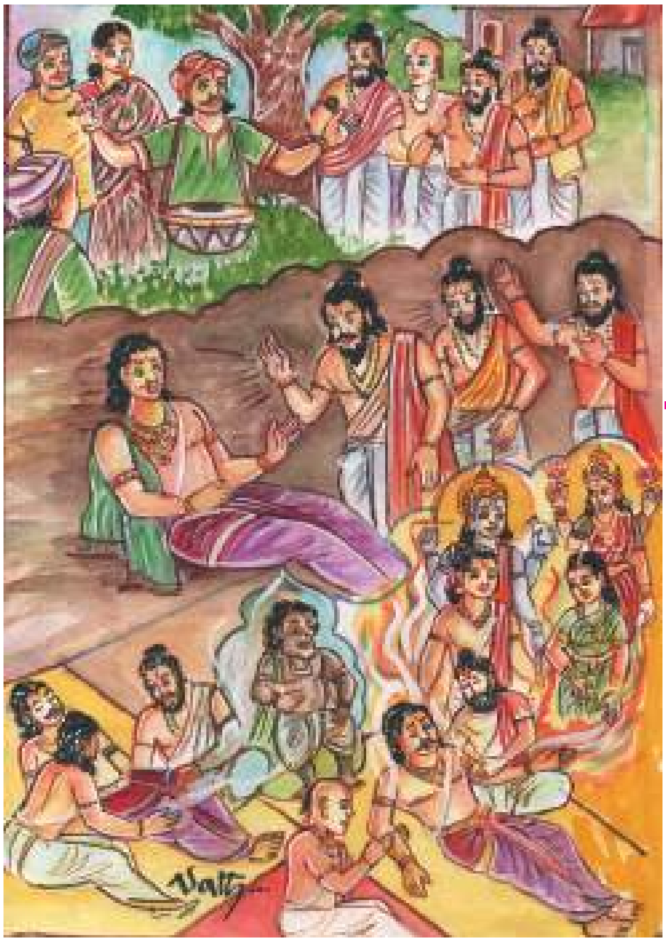

परम सत्य की खोज में ध्रुव महाराज के वन चले जाने पर उनके पुत्र उत्कल ने राज्यभार संभालना स्वीकार नहीं किया। उत्कल जन्म से ही एक आत्म-संतुष्ट व्यक्ति थे। अपनी ओर किसी का ध्यान आकर्षित होने से बचने के लिए वे लोगों के समक्ष उन्मत्त, अंधे, गूंगे व बहरे बने रहते थे। अतः राजपरिवार के सभी वरिष्ठ व्यक्तियों ने उन्हे राज्य की देखभाल करने के योग्य न समझकर उनके भाई वत्सर का राज्याभिषेक किया। ध्रुव महाराज की इला एवं भ्रमि नामक दो पत्नियाँ थीं। उत्कल इला का पुत्र था, और वत्सर भ्रमि का। इस प्रकार वत्सर इस जगत के राजा बने। वत्सर की पत्नी का नाम स्वर्वीधि था। उसने पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, ऊर्ज, वसु एवं जय नामक छह पुत्रों को जन्म दिया। पुष्पार्ण की प्रभा एवं दोषा नामक दो पत्नियाँ थी। राजा अंग का जन्म भी उनके परिवार में हुआ था। राजा अंग की पत्नी ने वेन नामक एक अत्यंत कुटिल पुत्र को जन्म दिया। इसका विस्तृत विवरण आगे प्रस्तुत है।

राजा अंग ने एक अश्वमेध यज्ञ करने की योजना बनाई। योग्य ब्राह्मणों ने पूर्णता से यज्ञ का भली प्रकार समापन किया। उस यज्ञ को पूर्णतया वेदिक विधि के अनुसार सम्पन्न करने पर भी देवता अपनी आहुतियों को स्वीकार करने के लिए नहीं आये। राजा अंग की भक्ति में कोई कमी न थी और आहुतियों की व्यवस्था भी त्रुटि-रहित थी। संस्कृत में मंत्रों के उच्चारण में भी कोई त्रुटि न थी। फिर भी देवतागण नहीं आये। एसी परिस्थिति से राजा अंग उदास हो गये। उन्होंने मौन वृत तोड़कर एसी स्थिति का कारण पूछा। उस समय दरबार में उपस्थित कुछ महान व्यक्तियों ने राजा को देवताओं के उस असामान्य व्यवहार का कारण बताया। उन्होने स्पष्ट रूप से बताया कि इसमें राजा अंग का कोई दोष न था, किन्तु राजा का संतान-विहीन होना ही देवताओं द्वारा आहुतियाँ न स्वीकार करने का कारण था। उन्होने राजा को बताया कि पूर्व जन्म के किसी अज्ञात पाप कर्म के कारण वे संतान-विहीन थे। उन्होने राजा को भगवान श्रीहरि की प्रसन्नता के लिए एक यज्ञ संपन्न करके पुत्र प्राप्त करने की सलाह भी दी। भगवान श्रीहरि के प्रसन्न होने पर सभी देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं। उनके सुझाव के अनुसार राजा ने यज्ञ आयोजित किया और भगवान उनकी भक्ति से बहुत प्रसन्न हुए। भगवान के प्रसन्न होने पर वहाँ यज्ञ-कुण्ड की अग्नि से श्वेत वस्त्रों वाला एक दिव्य व्यक्ति प्रकट हुआ और उसने राजा को एक सोने के बर्तन में खीर प्रदान की। राजा अंग ने खीर को सूँघ कर उसे अपनी पत्नी को दे दिया। तब रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया, किन्तु रानी का पैत्रक पक्ष पूर्णतया धार्मिक न होने के कारण उसका पुत्र भी अधार्मिक

बन गया। अपने नाना के अधार्मिक होने के कारण वह बालक भी अधार्मिक हो गया। वेद शास्त्रों के अनुसार एक बालक अपने मामा के परिवार की परम्परा पूर्णतया ग्रहण करता है। इसे ''नराणां मातुलकर्म'' कहते हैं।

उस बालक का नाम वेन था। वह वन में जाकर व्यर्थ ही पशुओं का वध कर देता था। यहाँ तक कि वह साथ में खेलने वाले बालकों का भी निर्दयता से वध कर देता था। राजा अंग पुत्र के एसे स्वभाव से अत्यंत क्षुभित हो गये और उसे सुधारने का प्रयत्न किया। लेकिन उनके सभी प्रयत्न व्यर्थ हो गये। उस कठोर परिणाम से राजा बहुत उदास हो गये। वे अपने समक्ष उत्पन्न हुई परिस्थिति के बारे में दिन-रात सोचने लगे। एक दिन अत्यंत विक्षुब्ध होकर वे किसी को सूचित किये बिना ही राज्य छोड़कर चले गये। उन्होंने अपनी पत्नी को भी नहीं बताया और शांति की प्राप्ति के लिए वन चले गये। राजा के वन चले जाने पर राज्य के सभी लोग चिन्तित हो गये और उन्हे खोजने का प्रयत्न किया, किन्तु उनके सभी प्रयत्न व्यर्थ हो गये। तब भृगु जैसे संतो ने मंत्रियों द्वारा कड़ा विरोध किये जाने पर भी वेन का राज्याभिषेक कर दिया।

सर्वोच्च अधिकारी का पद प्राप्त करते ही वेन बहुत घमण्डी हो गया। स्वयं को संतों से उच्च समझकर वेन ने उनको अपमानित करना प्रारंभ कर दिया। उसकी असीमित निर्दयता के कारण सभी चोर, नीच व्यक्ति एवं असामाजिक तत्व वहाँ पनपने लगे। राजा वेन एक बिना अंकुश के हाँथी की भाँति हो गया। उसने घोषणा की कि उसके राज्य में किसी प्रकार का यज्ञ, दान या कोई अन्य धार्मिक कार्य नहीं होगा। वेन के एसे व्यवहार से उन संतों को बहुत चिन्ता हुई, जिन्होने उसे अच्छा परामार्श देने का निश्चय किया था। उन्होने राजा का पतन होने और उसे नरक में जाने से बचाने के लिए उसे परामर्श देना अपना कर्तव्य समझा। अतः सभी संत एकत्रित होकर राजा वेन के पास गये और परामर्श दिया कि वे यज्ञों पर रोक लगाकर देवताओं का अपमान न करें। लेकिन वेन को उनकी सलाह अत्यंत कटु प्रतीत हुई। और वह उलटे संतों को ही .अपनी सलाह देने लगा। सभी प्रयत्नों के व्यर्थ हो जाने पर संतों ने हताश होकर राजा वेन का वध कर दिया। क्षण भर में ही वेन प्राण विहीन हो गया। तब सभी संत अपनी कुटिया में लौट गये। लेकिन वेन की माँ ने उसके शरीर को तेल में सुरक्षित रखकर किसी चमत्कार की प्रतीक्षा करना प्रारंभ कर दिया।

राजा वेन की मृत्यु के तुरंत बाद सभी उपद्रवी तत्व सक्रिय हो गये और उन्होने सामान्य व्यक्तियों को लूटना प्रारंभ कर दिया। यद्यपि सभी संतों को इस स्थिति का पता लगा, लेकिन उन्होने उस पर नियंत्रण करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। उन्हे अशांति रोकने का पूरा अधिकार था किन्तु उन्होने सोचा कि यह तो एक राजा का कर्तव्य है। लेकिन संतों ने वेन के मृत शरीर की जाँघों का मंथन किया। तुरंत ही वेन की जाँघों से एक बहुत कुरुप, काला एवं बौना व्यक्ति उत्पन्न हुआ। वह व्यक्ति निषाद था। उसकी आँखे लाल एवं बाल ताँबे के रंग के थे। उस बौने व्यक्ति ने संतों के समक्ष प्रणाम करते हुए अपने लिए आदेश के बारे में पूछा। उसने पूछा ''महाश्य! कृपया मुझे आदेश दें, क्या करना है?'' संतो ने कहा ''बैठ जाओ'' (निषाद)। इस प्रकार वह काला व्यक्ति निषाद कहलाया। उसने जन्म होते ही राजा वेन के समस्त पापों का फल ग्रहण कर लिया जिससे वह काले रंग का हो गया। इसी कारण निषाद जाति के लोग सदैव चोरी, डकैती एवं शिकार जैसे पाप कर्मों में लगे रहते हैं। उन्होने जंगलों एवं गुफाओं में रहना प्रारंभ कर दिया।

बाद में संतों एवं ब्राह्मणों ने राजा वेन के मृत शरीर की भुजाओं का मंथन किया। फलस्वरुप उन दो भुजाओं से एक स्त्री तथा एक पुरुष का जोड़ा उत्पन्न हुआ। संतों को तुरंत ज्ञात हो गया कि वह शक्तिशाली पुरुष भगवान का शक्त्यावेश अवतार हैं। वह पुरुष भगवान का अवतार एवं स्त्री देवी, लक्ष्मी का अवतार थे। सभी संतों ने कहा कि ''विश्व भर में अपने यश को फैलाने वाला यह पुरुप पृथु नाम से विख्यात होगा। और यह सर्वार्धिक सुंदर स्त्री अर्चि नाम से सुप्रसिद्ध होगी। भविष्य में अर्चि का विवाह पृथु से होगा। परम भगवान अब पृथु के रूप में प्रकट हुए हैं और देवी लक्ष्मी की शक्त्यावेश अवतार अब अर्चि के रूप में प्रकट हुई हैं।'' इस प्रकार सर्वाधिक शक्तिशाली अवतार वाले राजा पृथु का इस पृथ्वी पर आगमन हुआ।

(गतांक से)

श्री प्रपन्नामृतम्

(तीसरा अध्याय)

मूल लेखक - श्री स्वामी रामनारायणाचार्यजी

प्रेषक - श्री रघुनाथदास रान्दड

श्रीयादवप्रकाशाचार्य की सन्निधि में अध्ययन करते हुए श्रीरामानुजाचार्य का राजकन्या को ब्रह्मराक्षस से मुक्ति दिलाना

पहले से ही अध्ययनरत अपने अन्तेवासी भगवत्पादीय रामानुजाचार्य की कुशाग्र बुद्धि को देखकर पंडित यादवप्रकाशाचार्य ने अनुमान लगा लिया कि यह शेष का अवतार है। तदनन्तर उस देश की राजकन्या को ब्रह्मराक्षस का आवेग हो गया। तन्निवारणार्थ बहुत से मन्त्रज्ञ आये किन्तु सबको असफलता ही हाथ लगी राजा की आज्ञा से कुछ शिष्यों के साथ राजमहल तक आये हुए यादवप्रकाशाचार्य को सम्मानपूर्वक लाकर राजा ने राजकुमारी को दिखाया। मन ही मन मन्त्र पढ़ते हुये यादवप्रकाशाचार्य उसके सन्निकट में जाकर राजकुमारी को उस मन्त्र से अभिमन्त्रित करने लगे जिसके स्मरणमात्र से ही प्रेत-पिशाचादि भाग जाते हैं। किन्तु उस ब्रह्मराक्षस ने दाँत पीसते हुए प्रलयकालीन मेघ की तरह गर्ज कर यादवप्रकाशाचार्य को इतने जोर से डाँटा कि वे भयभीत हो गये। भयाक्रान्त उन्हें देखकर ब्रह्मराक्षस उनके सामने अपने पैरों को फैलाकर बैठ गया और हँसते हुए बोला-यादव! अपने शिष्यों के साथ यहाँ तुम व्यर्थ ही आये। तुम मुझे अपने मन्त्रों से हटा नहीं सकते। पूर्व जन्म के संस्कार के कारण तुम्हारे अनुच्चारित मन्त्र को भी मैं जानता हूँ। अच्छा तो पहले तुम यही बतलाओ कि पूर्व जन्म के किस कर्म से तुम ब्राह्मण और मैं ब्रह्मराक्षस हुआ?

भयभीत एवं लज्जित यादवप्रकाश को उत्तर नहीं देते हुए देख ब्रह्मराक्षस बोला-''तो सुनो पहले तुम्हारे पूर्वजन्म की बात बतलाता हूँ। पूर्वजन्म में तुम मथुरा नामक नगर के सन्निकट किसी भूखण्ड के पश्चिम दिशा में कमलों से भरे सरोवर के किनारे बल्मीक में गोह का शरीर धारण करके रहते थे। कदाचित् कहीं से आते हुए कोई वेदान्ती श्रीवैष्णव ब्रह्मण ने स्नान करके उसी बल्मीक पर भोजन बनाकर, भगवान् विष्णु को भोग लगाकर एवं प्रसाद पाकर उच्छिष्ट पात्र को वहीं छोड़कर चले गये। बाहर से आकर तुमने उस उच्छिष्ट पात्र को देख उसमें छूटे अन्न को खा लिया। उसी के पुण्य से तुमने ब्राह्मण कुल में जन्म लिया। अतः अब भी यदि तुम अपना भविष्य उज्ज्वल बनाना चाहते हो तो कान्तिमती के पुत्र रामानुजाचार्य की शरण में जाकर अपना मार्ग प्रशस्त करो।

अब मैं अपने पूर्व जन्म की कथा बतलाता हूँ। पूर्व जन्म में मैं वेद एवं वेदान्त का ज्ञाता ब्राह्मण था। पत्नी के साथ एक बार मैंने यज्ञारम्भ किया किन्तु हमारी क्रियायें एवं मन्त्र लुप्त हो गये, जिससे मैं ब्रह्मराक्षस हो गया। उसी समय से सभी प्राणियों को भयभीत करता हुआ मैं नगरों, पर्वतों एवं जंगलों में घूमा करता था। अचानक कांची

आकर इस राजकन्या को मनोहर नगरोद्यान में भ्रमण करते हुए देख इसी पर आसक्त होकर मैंने इसे पकड़ लिया। अब सन्तापरहित हो, इसके साथ विचार करता हूँ। राजा की आज्ञा से मेरे निवारणार्थ बहुत से मन्त्रज्ञ यहाँ आये, पर सबों को असफलता ही हाथ लगी। सभी भयभीत होकर भाग चले। तुम भी अपने मन्त्रों से मुझे हटा नहीं सकते हो। मुझ पर तुम्हारे सभी मन्त्र उसी तरह बेकार होंगे जिस तरह कि ऊसर भूमि में डाला गया बीज। हाँ! तुम्हारा पुरुषोत्तम छात्र रामानुजाचार्य यदि अपने पैरों से छूकर अपना चरणोदक मुझे दे दें, तो स्वेच्छया मैं इसे छोड़कर चला जाऊँगा।

ब्रह्मराक्षस की वाणी सुनकर पत्नी सहित राजा ने जाकर श्रीरामानुजाचार्य को साष्टांग प्रणाम करके प्रार्थना की कि-भगवन! आप मेरी पुत्री की रक्षा करें, आपकी महिमा के विषय में अज्ञ मैं, ब्रह्मराक्षस के द्वारा ही आपकी महिमा जान सका हूँ। राजा की प्रार्थना से प्रसन्न भगवान रामानुजाचार्य ने जाकर राजकुमारी के सिर पर प्रेमपूर्वक पैर रखकर अपना चरणोदक दे, ब्रह्मराक्षस को आदेश दिया कि वह राजकुमारी को छोड़ दे। भगवान रामानुजाचार्य का आदेश पाकर सभी पापों से मुक्त ब्रह्मराक्षस उस राजकन्या तथा आत्मघाती अपने उस शरीर को त्यागकर, दिव्यदेह धारण करके सूर्य की तरह चमकते हुए विमान पर चढ़कर नित्यमुक्त सेवित वैकुण्ठलोक को चला गया।

राजकुमारी भी भगवान राम के चरणों के स्पर्श से शापमुक्त अहिल्या की तरह प्रेतबाधा से मुक्ति पाकर दुष्टग्रहों से मुक्त आकाश में चमकते हुए रोहिणी नक्षत्र की तरह राजप्रसाद में सुशोभित हुईं। अपनी पुत्री को प्रसन्न देखकर हर्षोत्फुल्ल राजा ने भगवान रामानुजाचार्य का सुवर्णाभिषेक करके पण्डित यादवप्रकाशाचार्यजी का भी सत्कार किया।

स्वभाव से ही ईर्ष्यालु यादवप्रकाशाचार्य रामानुजाचार्य द्वारा खुशी-खुशी सुवर्णाभिषेक का सम्पूर्ण सामान दान में पाकर भी रामानुजाचार्य की पूजा से अपना अपमान मानता हुआ उनसे मानसिक बैर करने लगा।

कान्तिमती की छोटी बहन द्युतिमती के पुत्र गोविन्दाचार्यजी रामानुजाचार्य का सुयश सुनकर, माता की आज्ञा ले, उनके दर्शनार्थ कांची आकर उन्हें यादवप्रकाशाचार्य के यहाँ पढ़ते देखा। श्रीरामानुजाचार्य

भी अपने मौसेरे भाई से प्रेमपूर्वक मिले। इसके बाद गोविन्दाचार्य भी कांची ही रहकर रामानुजाचार्य के साथ यादवप्रकाशाचार्य से ही अध्ययन करने लगे।

एक बार वेदान्ताध्यापन करते हुए पंडित यादवप्रकाशाचार्य ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' श्रुति का प्रयत्लीक रूप उपर्युक्त श्रुति का प्रयत्लीकार्थ सम्भव नहीं है। क्योंकि वेदान्त के ''तत्त्वमसि'' एवं ''सदेव सोम्येदमग्रासीदेकमेवाद्वितीयम्'' इत्यादि सद्विद्या प्रकरण में पढ़े गये वाक्य सगुण ब्रह्म के ही प्रतिपादक हैं।

भगवान रामानुजाचार्य की वाणी सुनकर दुष्टात्मा यादवप्रकाश उन्हें डाँटते हुए बोला- ''दुष्ट! तुम मेरे शिक्षक तो नहीं हो कि मुझे शिक्षा दे रहे हो।'' पण्डित यादवप्रकाश के इस रुक्ष व्यवहार से दुःखी भगवान रामानुजाचार्य वहाँ से उठकर चले आये और अपने घर में ही पहले के पढ़े हुए शास्त्रों का अभ्यास करते हुए सन्तुष्ट रहने लगे।

।। श्री प्रपन्नामृत का तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ ।।

(क्रमशः)

युवता भगवद्गीता और नौजवान

नौजवानों के लिए सतोगुणी प्रसन्नता आवश्यक

तेलुगु मूल - डॉ.वैष्णवाँघ्रि सेवक दास
हिन्दी अनुवाद - श्री अमोघ गौराँग दास

प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्नता एवं आनंद प्राप्ति की इच्छा रखता है। प्रसन्नता न चाहने वाला या दुःखी होने की लालसा रखने वाला कोई नहीं मिलेगा। यह तथ्य मनुष्यों के लिए ही नहीं अपितु पशुओं के लिए भी सच है। मनुष्यों एवं पशुओं में अंतर यह है कि मनुष्य अपनी इच्छित प्रसन्नता का चयन कर सकते हैं, किन्तु पशु नहीं। पशुओं के पास पर्याप्त बुद्धि नहीं होती है और वे शीघ्र ही सब कुछ भूल जाते हैं। भगवद्गीता में भगवान कृष्ण महत्वपूर्ण संदेश देते हैं कि शांति के बिना आनंद बहुत दूर की बात है। इस बात को भली प्रकार याद रखना चाहिए। आनंद प्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति को पहले शांति प्राप्त करने की इच्छा करनी चाहिए। एसा क्यों है? क्योंकि शांति में स्थापित होने पर कोई भी अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। अर्थात शांति के द्वारा ही सर्वत्र विजयी होना संभव हैं। सभी इच्छित सफलताओं को प्राप्त करने वाला व्यक्ति निश्चित रूप से प्रसन्न रहेगा।

हनुमानजी एक वानर सैनिक हैं जिन्हें सीता माता को खोजने का कार्य सौंपा गया था। हनुमान को अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर अग्रसर न होते देखकर जाम्बवान के निर्देशन में सभी वानर सैनिकों ने उन्हे सौंपे हुए कार्य को सम्पन्न करने के लिए उत्साहित किया। तब शीघ्र ही हनुमानजी के अंदर ऊर्जा का प्रवाह हो गया। उन्हे अपने हृदय में महान शांति का अनुभव हुआ और उनके अंदर सफलता प्राप्ति का पूर्ण विश्वास जग गया। उन्होने सभी वानर सैनिकों के समक्ष घोषणा करते हुए कहा कि वे श्रीलंका से सीता के बारे में संपूर्ण समाचार लेकर अवश्य आयेंगे। इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हे इस कार्य को करने में किसी बाधा का सामना नहीं करना पड़ा; लेकिन वे सभी बाधाओं को आसानी से पार करने में सफल हुए। भगवान राम को सीता की कुशलता का शुभ समाचार देने के लिए उन्होने एक-एक करके सभी अड़चनों को पूरी तरह हटा दिया। अतः वास्तव में शांति के द्वारा सफलता प्राप्त होती है, जिसके परिणाम स्वरूप प्रसन्नता मिलती है।

भगवद्गीता ने तीन प्रकार के सुखों का वर्णन करने का कदम उठाया। सतोगुण में प्रसन्नता की आकांक्षा रखने वाला व्यक्ति असीमित दुःखों वाले भवसागर के किनारे तक पहुँच सकता है।

''हे भरतश्रेष्ठ! अब मुझसे तीन प्रकार के सुखों के बारे में सुनो, जिनके द्वारा बद्ध जीव भोग करता है और जिनके द्वारा कभी-कभी दुःखों का अंत हो जाता है।'' (भगवद्गीता १८.३६)

''जो प्रारम्भ में विष जैसा लगता है, लेकिन अंत में अमृत के समान है और जो मनुष्य में आत्म-साक्षात्कार जगाता है, वह सात्विक सुख कहलाता है।'' (भगवद्गीता १८.३७)

सतोगुणी प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए पहले तपस्या की आवश्यकता होती है। दृढ़ता पूर्वक अपने लक्ष्य पर केन्द्रित व्यक्ति, तपस्या करना विष को ग्रहण करने की तरह कठिन होने पर भी, तपस्या करने से पीछे नहीं हटता है। किसी व्यक्ति के द्वारा ५ से १० वर्षों तक प्रतिदिन कम से कम ६ घंटे कठोर परिश्रम किये बिना ओलम्पिक्स में स्वर्ण-पदक प्राप्त करना केवल उसकी आकांक्षा बनकर रह जाती है। पुरस्कार वितरण के समय स्वर्ण-पदक प्राप्त करने में एक मिनट से भी कम समय लगता है, लेकिन स्वर्ण-पदक को प्राप्त करते हुए लिया गया फोटो खिलाड़ी को वास्तव में जीवन भर प्रेरणा देता है। करेला एवं नीम की पत्तियाँ कड़वी अवश्य होती हैं, किन्तु वे मनुष्यों के लिए स्वास्थ्यकारी हैं। मीठे व्यंजन स्वादिष्ट तो होते हैं, किन्तु उनसे बीमारियाँ भी होती हैं। अतः नौजवानों को केवल सतोगुण में ही आहार लेने का प्रयत्न करना चाहिए और केवल सतोगुण में ही आनंद प्राप्ति की आकांक्षा करनी चाहिए। एसा आनंद निश्चित रूप से अमृतत्व प्रदान करने वाला होगा। सतोगुण में प्रसन्नता की कामना करने वाले व्यक्ति को अपने लक्ष्य के अनुकूल ही आदतें बनानी चाहिए, उसी के अनुसार कार्य करने चाहिए और लक्ष्य के अनुसार ही अपना स्वभाव बनाना चाहिए। इससे अच्छे स्वास्थ्य, मन के संतुलन, बुद्धि की सक्रियता एवं महान विजय की प्राप्ति होती है। जिससे तुम्हें निश्चित रूप से प्रसन्नता प्राप्त होगी।

तिरुमल में दर्शनीय क्षेत्र

स्वामि पुष्करिणी : मंदिर के निकट स्थित यह तालाब अतिपवित्र है। यात्री मंदिर में प्रवेश करने के पूर्व इसमें स्नान करते हैं। आत्मा व शरीर की शुद्धि के लिए यहाँ स्नान करना श्रेष्ठ है।

आकाश गंगा : मंदिर की उत्तरी दिशा में लगभग ३ कि.मी. दूरी पर स्थित है।

पापविनाशनम् : मंदिर की उत्तरी दिशा में ५ कि.मी. दूरी पर स्थित है।

वैकुंठ तीर्थ : मंदिर की ईशान दिशा में लगभग ३ कि.मी. दूरी पर स्थित है।

तुम्बुरु तीर्थ : मंदिर की उत्तरी दिशा में १६ कि.मी. दूरी पर स्थित है।

भूगर्भ तोरण (शिलातोरण) : यह अपूर्व भूगर्भ शिलातोरण मंदिर की उत्तरी दिशा में १ कि.मी. दूरी पर स्थित है।

ति.ति.दे. बगीचे : देवस्थान के आध्वर्य में सुंदर व आकर्षक बगीचे लगे हुए हैं, जिनमें विशिष्ट पेड व पौधे मिलते हैं।

आस्थान मंडप (सदस हाल) : यहाँ धर्म प्रचार परिषद् के आध्वर्य में धार्मिक कार्यक्रम मनाया जाते हैं। जैसे भाषण, संगीत-गोष्ठी, हरिकथा-गान एवं भजन।

श्री वेंकटेश्वर ध्यान ज्ञान मंदिर (एस.वी. म्यूजियम्) : इस कलात्मक सुंदर भवन में एक म्यूजियम्, ध्यान केंद्र तथा छायाचित्र-प्रदर्शिनी आयोजित है।

ध्यान केंद्र : तिरुमल के एस.वी. म्यूजियम् एवं वैभवोत्सव मंडप में स्थित ध्यान केंद्रों में भगवान पर ध्यान केंद्रित कर भक्त शांति को प्राप्त कर सकते हैं।

हमारे मंदिर

ॐ श्रीम् ब्रह्ममात्रे नमो नमः !!

(श्री पद्मावती देवी मंदिर, तिरुचानूर)

तेलुगु मूल - श्रीमती एम.पद्मावती वेंकटरमण

हिन्दी अनुवाद - डॉ.एम.रजनी

पावन स्वर्णमुख के तट पर विराजित शुकमहर्षि आश्रम ही आज का तिरुचानारु है। इसे 'तिरुच्चुकनूर्', 'तिरुच्चाकनूर्' जैसे नाम ८, ९वीं शताब्दि के तिरुमल तिरुपति के देवालय शासनों में उल्लेखित किया गया। यह श्री शुकपुरि आवास योग्य की तरह, ध्यान, जपतपों का निलय, मुक्तिमार्गोपदेश के रूप में विराजित हुआ जैसा पौराणिक और इतिहास के द्वारा विदित होते है। श्रीवैष्णव केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध यह दिव्यक्षेत्र किसी समय शिवपूजाराधन के लिए भी अवकाश दिया गया। विलक्षण गाँव सभाओं में, राजाधिकारियों के पर्यवेक्षण से और वैदिक धर्म व्याप्ति के लिए क्रम विकास बना जैसा लिखित प्रमाण है। तिरुचानूर इतिहास के पन्ने खोलने से पद्मसरोवर में कांचन कमल की तरह दृष्टिगोचर होता है। सहस्रकिरण के अजीब कांति प्रसारित होता है। श्रीनिवास का हृदय कमल ही दिव्य खुशबू को बिखराता है।

तिरुमल मंदिरों में प्रथम शासन (ई.सन् ८३०) तिरुचानूर की कहानी को बोध कराता है। इस कहानी में यह बताया गया कि तिरुचानूर में एक मंदिर रहता था भगवान वेंकटरमणजी को नित्यपूजा चलता था। उस 'तिरुविलान्कोविल्' में मूलमूर्ति के अलावा एक उत्सवमूर्ति था। वह मूर्ति तिरुमल वेंकटपति को प्रतीक बना था। यह रजत उत्सवमूर्ति तिरुमल में प्रतिष्ठित कीर्ति 'पल्लव रानी-सामवायी' को मिलती है। उत्सवनिर्वाहण के लिए इस रजतमूर्ति के साथ कीमति मोतियों, रत्नों का आभूषण भी समर्पित किया जैसा ८-९ शताब्दियों के शासन से बोध हुआ। यह तिरुविलान्कोविल् पल्लव चोल बाणराजाओं की सेवाओं को पाया था। जनता को दुर्गमयोग्य तिरुमल में ठीक तरह से आलयप्रांगण के बिना उत्सवों को ठीक तरह से गलियाँ न होने के कारण तिरुचानूर में 'तिरुविलान्कोविल्' की आवश्यकता बना जैसा 'तिरुमलओलुगु' प्रामाणिक वैष्णवग्रन्थ में उल्लेख किया। तिरुमल श्रीनिवास सन्निधि में ध्वजारोहण को शुरू करके अन्य उत्सवों को जुलूस तिरुचानूर में अयोजित किया गया। और अंतिम दिन ध्वजावरोहण तिरुमल में ही आयोजित किया गया था। भगवद्रामानुज ने यह विधान ठीक नहीं समझ कर तिरुमल वेंकटपति को नित्यपूजा विधान और उत्सव भी तिरुमल में ही मनाया जैसा आयोजित किया गया। तिरुमल अर्चामूर्ति के बारे में उत्पन्न शैव-वैष्णव विवाद को भी हल करके वेंकटेश्वर वैकुण्ठवास का प्रामाणिक नकल है ऐसा आधार और हेतुबद्ध से निरूपित करने का बडप्पन भी इन विशिष्टाद्वैत प्रतिष्ठापनाचार्यजी को ही प्राप्त होता है। पल्लव और चोलराजाओं के बीच में उत्पन्न राजकीय वैषम्यों के कारण भी कुछ दिन 'तिरुविलान्कोविल्' तिरुचानूर में स्थगित हो गया। यह मंदिर जनता और राजाओं के निराधार का पात्र बना था। चोलुओं (राजाओं) के शिवपारवशता का निदर्शन

तिरुचानूर के पास जोगिमल्लवर में ''पराशरेश्वरालय'' का निर्माण हुआ। यादवरायलु ने तिरुचानूर का वैभव की रक्षा किया था। कृष्ण भक्त राजाओं ने १२वीं शताब्दि में तिरुचानूर में कृष्ण-बलराम मूर्तियों का मंदिर का निर्माण किया था। १६-१७वीं शताब्दियों में कृष्णालय के दक्षिण भाग में सुन्दरवरदराजाओं का मंदिर उत्पन्न हुआ था। उसके बाद उत्तर भाग में अगणितमहिमाओं का वास बनकर अलिवेलुमंगा का मंदिर बना था। वही आज 'पद्मावती' के नाम से प्रसिद्ध होकर भक्तों की इच्छाओं को पूर्ण करनेवाली कामधेनु बनगयी।

भक्त पराधीन भगवान ने प्रत्यक्ष ढंग से यात्रिकों की सुविधाओं को परखनेवाले थे ऐसी कहानियाँ प्राचीन देवालय वांगमय में प्रकटित होता है। 'तिरुमलओलुगु' ग्रन्थ में एक वृत्तांत इस प्रकार है।

तिरुमल में 'शेव्वन्' नामक एक ग्वाला श्रीनिवास का भक्त था। वेंकटेश्वर उनको सपने में दिखकर एक जगह छुपायी गई निधि के बारे में बताकर उसको, 'अडिवार' पहाड के नीचे सिढियाँ बाँधने के लिए तिरुच्चुकनूर (तिरुचानूर) को सही रास्ता निर्माण केलिए इस्तेमाल किया था। हमारा निवास स्थान तक सेवापरायण लोग सुख से चढकर आने के लिए मार्ग बनाकर सिढियाँ बाँधने के लिए कहा था। तिरुमल, तिरुचानूर स्थान तिरुमल श्रीनिवास को बहुत ही पसंद का स्थान था। यहाँ तक यात्रिक आते थे। कपिलतीर्थ पहाड के नीचे एक गाँव था, उसके बाद रामानुजाचार्यलु ने गोविंदराजस्वामी को भी श्रीकृष्ण मंदिर में प्रतिष्ठित कराके गरुडव्यूह में उस मंदिर के आस-पास एक नगर का निर्माण कराया जैसा बोध होता है। रामानुज के नाम पर उस जगह को 'रामानुजपुर' नाम रखा गया था। गोविंदराजस्वामीजी का महत्व प्रसिद्ध होने के कारण उस क्षेत्र का नाम गोविंदराज शहर से प्रसिद्ध पाया था।

धीरे धीरे तिरुपति के साथ पहाड पर वेंकटपति सन्निधान के साथ 'गोविंदराजपट्टणम्' का नाम भी स्थिर बन गया था। तिरुपति, तिरुमल को अलग करके पहाड के ऊपर पहाड के नीचे नाम से बुलाना अर्वाचीन है।

तिरुचानूर पद्मसरोवर ऐतिहासिक प्रसिद्ध को पाया था। पंचमीतीर्थ के नाम से तिरुपति के आस-पास की जनता वहाँ झुण्ड की तरह पहुँच कर त्योहार मना लेते हैं। लक्ष्मीदेवी इस पद्मसरोवर से उत्पत्ति हुई जैसा मानकर सुहागन हल्दी-कुंकुम धारण करके उस सरोवर में गोते लगाते हैं। इससे संबंधित एक पौराणिक कहानी प्रचलित है।

नैमिशारण्य में मुनियों को एक संदेह उत्पन्न हुआ कि त्रिमूर्तियों में सबसे बडा कौन है? वे मालूम करना चाहते थे। भृगु महर्षि यह परीक्षा करने के लिए तैयार होगये। वे सत्यलोक, कैलास जाकर निराश होकर वैकुण्ठ को लौटकर आ गये। वैकुण्ठ में विष्णु ने महर्षि का आगमन को न देखा इससे महर्षि नाराज होकर पैर से विष्णु के वक्षःस्थल पर लात मारा। जिस स्थान पर ऋषि ने लात मारा वह स्थान लक्ष्मी ठहरने लायक न थी। अपने पति का अपमान को सहकर ऋषि की सेवा करते हुए देखकर लक्ष्मी नाराज होकर वैकुण्ठवास विष्णु को छोडकर पाताल पहुँच कर वहाँ कपिल महर्षि से पूजा पाने लगी। अगस्त्य प्रार्थना के अनुसार श्री महालक्ष्मी वहाँ से कोल्हापुर पहुँच गयी। श्रीनिवास ने नीलादेवी को वैकुण्ठ में रख कर भूदेवी के साथ लक्ष्मी की खोज में निकले। कोल्हापुर में पत्नी का अस्तित्व को पता करके लक्ष्मी के पास जाकर प्रदक्षिण करने लगे। इस प्रकार दस साल बीत गया लक्ष्मी प्रसन्न होकर अशरीरवाणी से इस प्रकार बोली ''हे सिरि रहित श्रीनिवास! दक्षिण दिशा की ओर जाओ। कृष्णवेणी नदी से २२ कोस की दूरी पर स्वर्णमुखी नदी प्रवाहित होती है। उस नदी के किनारे एक सरोवर का निर्माण करके स्वर्ण कमल की स्थापना कीजिए। देव लोक से सोने का कमल ले आकर महालक्ष्मी का मंत्र जप करते हुए अर्चना करने से लक्ष्मी प्रसन्न होगी। उस स्वर्ण कमल से सोलह साल की कन्या की तरह लक्ष्मी का आविर्भाव होगी। जाओ जल्दी जाओ।''

वह बात सुनकर श्री महाविष्णु ने गरुडारूढ होकर स्वर्णमुखी का दर्शन किया। वह वराह स्वामी का निवास स्थान अंजनाद्रि को पहुँचा स्वामी पुष्करिणी में स्नान किया। वहाँ वैखानस महर्षि का आतिथ्य को स्वीकार किया। मुनियों का बुलाओ पाकर राजकुमार बन गया। अश्वाकृति आकार प्राप्त गरुत्मंत के ऊपर चढ कर गिरि के दक्षिण भाग में स्वर्णमुखी नदी के तट पर पहुँच गया। वहाँ का रमणीय वातावरण आह्लादकर से था।

श्रीनिवास ने अपने कुन्तायुध से तालाब को खोदा था। वायु भगवान का स्मरण किया। इन्द्र की स्वीकृति से सोने की कमलों को मँगवाकर उन स्वर्ण कमलों का प्रतिष्ठा किया। गधवहु जो दिव्य कमलों को लाया था उससे महालक्ष्मी मंत्र का अनुष्ठान करते हुए अर्चना करने लगा। ब्रह्मीमुहूर्त में उठकर स्वयं पद्मसरोवर में स्नान करके, क्षीर पान करते हुए, सूर्य की सानिध्य में पश्चिमाभिमुख से बैठकर १२ साल कठोर दीक्षा से महालक्ष्मी की अर्चना किया। श्रीनिवास की भक्त परतंत्र को लक्ष्मी कृपा बहुत आवश्यक है। सिरि श्रीनिवास के छाती में उपस्थित नहीं होते तो उनका वरदहस्त रिक्त रह जाएगा। लक्ष्मी के बिना कलियुग वेंकटपति को अवतार की कहानी अधूरी रह जाएगी। अशरीर वाणी की बात सच होकर श्रीनिवास की तपस्या का फल प्राप्त हुआ।

कार्तिकमास-शुक्लपक्ष-पंचमी-शुक्रवार-उत्तराषाढ नक्षत्र-सहस्रकिरणों के स्पर्श से स्वर्ण कमल विकसित हुआ। पद्मसरोवर के बीच में एक तेजो राशि उत्पन्न होकर मदगज हाथियाँ चारों ओर से कमलों को ऊपर उठाया स्वर्ण कमल के सहस्रदल खिला, पद्मकर्णिक के ऊपर पद्मासीन होकर, हाथों में कमल, कमल जैसी आँख, पद्मसुगंध, पद्म की तरह मुख, विशाल आँखोंवाली श्री महालक्ष्मी अवतरित हुई। उनकी संपूर्ण शरीर सोने के रत्नाभूषणों से, मोतियों की लडी से बन्दी साडी से, बिजली की तरह चाँदनी की गुडी की तरह धीरे से चलकर आयी। अपने हाथों से माला को श्रीनिवास को पहनाकर दिव्यतुलसी सुंगध से युक्त श्री वैकुण्ठपति वक्षःस्थल के ऊपर अलिवेलुमंगा खडी हो गयी। सब भगवान आश्चर्य चकित होकर देखते समय श्रीनिवास ने गरुडारूढ होकर शेषाचल पहुँच गया। श्रीदेवी समेत श्रीपति 'स्वामि पुष्करिणी' तट के ऊपर आनंदनिलय के रूप में भक्तों को इस लोक में भी मोक्षानंद प्रसाद करते हैं।

यह तिरुचानूर पद्मसरोवर है। इस पद्मसरोवर के महत्व को नारदादी सभी लोगों ने प्रशंसा की। प्रथम आस्तिक सभी लोगों ने भक्ति के साथ सेवा की। व्यासपुत्र शुकमहर्षि ने यहाँ आश्रम का निर्माण करके आध्यात्मयोग का साधना किया। इसलिए इस ऋषि के नाम से यह गाँव 'श्रीशुकनूरे', 'तिरुशुकनूर', 'तिरुचानूर' के रूप में प्रसिद्ध पाया। भक्तों की इच्छाओं और राजाधिकारों की मदद से विष्णु-शिव-देवालयों का आविर्भाव हुआ था। मुख्य रूप से 'पद्मावतीदेवी' सन्निधान पूर्व वैभवों को पाया था। तिरुमल तिरुपति देवस्थान के अंतर्गत आनेवाला यह मंदिर 'सोने का शांतिविमान' को ठहराया। इस प्रकार तिरुचानूर शांतिविमान पद्मावती, तिरुमल आनंदनिलय श्रीनिवास का होकर खडा था। कार्तिक मास में पाँचरात्रागमानुसार इस लक्ष्मीदेवी का ब्रह्मोत्सव तिरुमल वेंकटेश्वरस्वामी ब्रह्मोत्सवों की तरह आयोजित किया जाता है। पंचमीतीर्थ के साथ ही ब्रह्मोत्सव समाप्त हो जाता है। उस दिन भगवान श्रीनिवास को विशेषपूजा किया जाता है। श्रीनिवास ने अपनी पत्नी अलिमेलुमंगा के लिए भेजी जानेवाली भेंट तुलसी, हल्दी, पीतांबरम, पडि आदि देवालय मर्याद के साथ तिरुमल (तिरुवीथियों) के गलियों में जुलूस निकलकर तिरुचानूर पहुँचता है। तिरुचानूर पद्मावती 'सोने की पालकी' में जुलूस निकलकर विशेषचूर्णाभिषेक विधि पूर्ण होने के बाद पद्मसरोवर मंडप में पहुँचती है। सुदर्शन चक्र के साथ तिरुमल सार्वभौम श्रीनिवास ने जिस 'पडि' को भेजा था। उसे देवालयमर्यादा के साथ स्वीकार करके सरोवरमंडप में पहुँचा है। उस मंडप में चक्रस्नान सांप्रदाय और वैभव से मनाया जाता है। उस सुदर्शन चक्र के साथ वहाँ इकट्टे हुए हजारों भक्त लोग पद्मसरोवर में डुबकी लगाते हैं। यह चक्रस्नान संपूर्ण होने तक तिरुमल में श्रीनिवास को किसी प्रकार की पूजा नहीं होगी। ऐसी हालत में भगवान श्रीनिवास तिरुमल में क्यों रहेंगे? अपनी पत्नी पद्मसरोवर से उत्पन्न होने के कारण उस जन्म दिन के माहोल में भाग लेने के लिए श्रीपति तिरुचानूर में ही रहेंगे। धर्मपत्नी के विषय में हर एक व्यक्ति जिस धर्म का पालन करना चाहिए, उस धर्म को यह 'पद्मावती श्रीनिवास' की कहानी बोध कराती है। श्री शुकजी का गाँव होने के कारण यह तिरुचानूर बना था। लक्ष्मी, अलमेलुमंगा और पद्मावती ये सब नाम श्रीनिवास की पत्नी के पर्याय शब्द है। आप जिस नाम से पुकारने पर भी जवाब देकर वर देनेवाली यह वरलक्ष्मी श्रीनिवास के लिए रक्षा है। अब हम पद्मावतीदेवी के मंदिर के बारे में जानने की कोशिश करेंगे।

युग-युगों तक न मिटनेवाली संस्कृति, इतिहास प्रसिद्ध पाकर महोज्वल महोन्नत कीर्ति पाकर पाश्चात्य देशों से आरती पाने वाला भारत देश कई पुण्यक्षेत्रों शिल्पकला शोभित इतिहास प्रसिद्ध स्थानों के लिए निलय बना था। वैष्णव मंदिरों के कई पुण्यक्षेत्रों में तिरुचानूर एक है। यह एक सुप्रसिद्ध वैष्णव क्षेत्र है। तिरुपति के दक्षिण दिशा में करीब तीन मील दूर में यह क्षेत्र है। यहाँ पद्मावतीदेवी के साथ श्रीनिवास ने प्रसन्नवेंकटेश्वर के रूप में विराजित होकर भक्तों का उद्धार करने के लिए ही खडे थे। पूर्व काल में तिरुचानूर, तिरुमल जानेवाले यात्रिकों के लिए ठहरने के लिए केन्द्र बना था। इसी कारण से यात्रिक यहाँ से ही पद्मसरोवर में स्नान करके तिरुमल को चलने वाले थे।

तिरुपति श्री गोविंदराजस्वामी मंदिर और इस मंदिर के बीच कई समानताएँ है। मंदिर का निर्माण, आलय का स्तंभों का मंडप, मुख द्वार के साथ अंतर भाग, गर्भगृह वास्तु शास्त्र के प्रकार निर्माण किया गया। गर्भगृह में श्री पद्मावतीदेवी पद्मासीन होकर प्रसन्न मुख से दर्शन देती है। पद्मावती माँ के चार भुजाएँ हैं। ऊपर के दोनों हाथों में कमल, बाकी दोनों हाथों में वरदमुद्र से शोभित है। गर्भगृह के दोनों ओर द्वारपालक विग्रह है। गर्भगृह के ऊपर भाग में निर्माण किया गया ''एकतलविमान'' पर 'कुटा', 'शाला' आदि अलंकार है। चारों दिशाओं में सिंह उपस्थित है। यह सब कुछ विजयनगर शैली में निर्माण किया गया। मंडप के पास ध्वजस्तंभ, बलिपीठ है। दक्षिण, पश्चिम, उत्तरदिशाओं में निर्मित स्तंभों का मंडप कुछ चोल और कुछ विजयनगर शैली से निर्माण हुआ था। उत्तर दिशा के मंदिर में रामानुज, दक्षिण में गरुड, विष्वक्सेन हैं। यह मंदिर १७वीं शताब्दि में पुनरुद्धरित हुआ।

तोंडमंडल को पूर्व से नारायणवन राजधानी था। मित्रवर्मा के बाद आकाशराज राजा बने थे। आकाशराजा की पत्नी धरणीदेवी थी। इन को वसुदान नामक लडका के साथ पद्मावती नामक एक बेटी भी थी। हाथियों का शिकार करते हुए आये श्रीनिवास को पद्मावतीदेवी ने अगस्त्याश्रम के समीप देखा था। उनके रूप की देख कर मोहित हुई थी। श्री पद्मावती देवी के रूप सौंदर्य पर श्रीनिवास सम्मोहित हो गये थे। वकुलमाता की मदद से नारायणवन में इन दोनों का विवाह हुआ था। आकाशराजा के भाई तोण्डमान, बेटा वसुदान ने पद्मावती श्रीनिवास के लिए मंदिर का निर्माण किया जैसा प्रतीति है। आज भी पद्मशालियों ने पद्मावतीदेवी को अपने इष्टदैव के रूप में पूजा करते हैं। इन्हें अलर्मेल्मंगतायार के नाम से भी पुकारा जाता है।

श्री पद्मावतीदेवी को 'अलर्मेल्मंगतायार' के रूप में १४९५ के शिलापलकों और १४९६ शिलापलकों में श्री पद्मावतीदेवी को करनेवाली पूजा विधान के बारे में लिखा गया। १५३३ में विजयनगर सार्वभौम महाराज अच्युतदेवराय महारायल ने उत्सवों के नाम से इस देवी को उत्सवों का प्रबंध कराया। ईसवी १५४५ शासनों में माता को पवित्र स्नान के लिए उपयोग की जानेवाली हल्दी, चंदन आदि सुगंध लेपनों का उल्लेख हुआ।

तिरुमल जानेवाले यात्रिकों के ठहरने का केन्द्र के रूप में तिरुचानूर ई.सन् ८वीं शताब्दि में वैष्णव मत गुरुओं को स्थावर के रूप में था। ई.सन् ९वीं शताब्दी में यह वैष्णव पीठ के रूप में ख्याति पाया था। कई वैष्णव परिवार यहाँ स्थिर निवास बनाए है। पूर्व तिरुमल घना जंगल होने से क्रूर जानवरों का ठिकाना होने के कारण तिरुमल यात्रा बहुत ही प्रयास से जुडा है। इसी कारण से श्रीनिवास के विग्रहों को श्रीनिवासमंगापुरम्, नारायणवनम्, तोंडवाडा के साथ तिरुचानूर आदि जगहों में प्रतिष्ठित किया गया। तिरुचानूर में श्रीनिवास 'प्रसन्नवेंकटेश्वर' के नाम से प्रसिद्ध हुए। उस जमाने में तिरुचानूर में मौजूद तिरुविलान्कोविल् तिरुमंत्र शालाओं में श्रीवारि की प्रतिमा प्रतिष्ठित किया। स्वामी के चाँदी की प्रतिमा को पल्लवरानी समवायी भेंट किया जैसा शिलालेखों पर आधारित है। ई.सन् १७८२ में हैदराली आदि मुसलमान लोगों के हमले में शिथिल होने के बाद फिर पूर्व इंडिया व्यापार संघ के शासन काल में उसका पुनरुद्धार किया गया। विजयनगर काल में इस मंदिर को कई भूरिदान दिया गया। उस समय में ही वैष्णव उच्च स्थिति में प्रचलित थे। ई.सन् १६वीं शताब्दी के प्रथम भाग में यहाँ वरदराज स्वामी के मंदिर का निर्माण हुआ था। वास्तु परिणाम के अनुसार ऐतिहासिक प्राधान्य के अनुसार सुप्रसिद्ध तिरुचानूर उधर इतिहासकारों को, इधर यात्रिकों को अवश्य दर्शनीय प्रदेश के रूप में ख्याति पायी है।

राखी

- श्री एल.आर.डी.मूर्ति

रक्षा बंधन के नाम से जाना जानेवाली 'राखी' भारतीय संस्कृति की झलक देनेवाला त्योहार है। अधर्म पर धर्म के विजय का प्रतीक समझनेवाले दशहरा और दीपावली, श्रीरामनवमी और श्रीकृष्ण जन्माष्टमी जैसे भगवानों के जन्मदिनों को त्योहारों के रूप में मनानेवाले त्योहारों के बीच में राखी का अलग पहचान है। भारतीय संस्कृति की विशेषता उसकी पारिवारिक व्यवस्था है। परिवार के रिश्तों को मजबूत करते हुए मनानेवाले कुछ ऐसे त्योहार है - भैयादूज, कड़वा-चौत, भगिनी हस्त भोजनम् आदि। राखी भी इसी सिलसिले का त्योहार है।

आजकल लोग यह मानने लगे कि 'राखी' भाई-बहनों का त्योहार है। लेकिन कुछ पुराणों और इतिहासों के अनुसार राखी अपने पति या भाई की रक्षा चाहते हुए स्त्री के द्वारा पुरुष की कलाई पर बाँधा जानेवाला पवित्र धागा है। इसीलिए यह रक्षाबंधन कहलाया गया है।

माना जाता है कि देवराज इंद्र कई बार असुरों से युद्ध करके हार जाने के बाद फिर उसे युद्ध के लिए जाना पड़ा। तब इंद्र की पत्नी शचीदेवी इंद्र लड़ाई के लिए जाते समय उसे 'रंक्षा बंधन' बाँधकर भेजती है तो इंद्र उस बार विजयी होकर लौटा था।

इतिहासों के अनुसार पति को युद्ध के लिए भेजते समय पत्नियाँ उन्हें टीका लगाकर, आरती उतारकर रक्षा के रूप में कलाई पर धागे को बाँधकर भेजती थीं वही राखी है।

राखी पूर्णिमा (१५.०८.२०१९) के संदर्भ में...

कब और कैसे मनाते हैं?

पवित्र महीना श्रावण में पूर्णिमा के दिन राखी को मनाते हैं। पहले बहन भाई के माथे पर टीका लगाकर, राखी बाँधकर आरती उतारती है और उसके बाद मुँह में मिठाई रखकर मुँह मीठा कर देती है। आजकल यह मानने लगे कि राखी बाँधनेवाली बहन की रक्षा का भार भाई अपने ऊपर लेता है हर पल उसकी रक्षा करने का वादा करते हुए उसे हल्दी-कुंकुम, नए वस्त्र देकर अपनी खुशी को प्रकट करता है।

राखी भारतीय संस्कृति का उदाहरण है। विदेशीय भी यह जानते हैं कि भारतीय बहनों को अधिक महत्व देते हैं उनकी सौभाग्य रक्षा के लिए कुछ भी करने को तैयार रहते हैं। इतिहास में इसका एक अच्छा उदाहरण इस प्रकार है-

भारत देश पर आक्रमण करने के लिए ग्रीक के राजा अलक्सैंडर भारत पहुँचता है तब उसे झीलम नदी के किनारे राजा पुरुषोत्तम (जो पोरस कहलाया गया) का सामना करना पड़ा। उस समय पोरस के समान वीर दूसरा नहीं थे। इसलिए जब अलक्सैंडर की पत्नी रुक्साना पोरस की वीरता के बारे में सुनती है तब वह उसे 'राखी' भेजती है। तब राखी के इज़्ज़त देते हुए पोरस युद्ध में अलक्सैंडर हार जाने पर भी उसे मारे बिना छोड़ देता है।

और एक कहानी के अनुसार मेवाड़ की रानी कर्मवती ने मेवाड की रक्षा के लिए मुगल बादशाह हुमायूँ को राखी भेजा, तो रानी पर युद्ध करने के लिए तैयार हुआ हुमायूँ भारतीय संस्कृति को मानते हुए रानी को बहन मानकर वापस लौट जाता है।

इस प्रकार राखी त्योहार के बारे में कई कथाएँ और लोक कथाएँ भी प्रचलित हैं। भारत देश में अब हर भाई-बहन खुशी से मनाने वाला यह त्योहार हर साल की तरह इस साल भी श्रावण पूर्णिमा को मनाने के लिए सारे भाई-बहन उत्सुकता से शह देख रहे होंगे।

राखी की शुभकामनाएँ

सुधार - जुलाई २०१९ पृष्ट २८ में बारीश समाचार को पृष्ट २९ के जैसा और २९ पृष्ट का समाचार २८ पृष्ट के जैसा पढ़ सकते है।

अगस्त महीने का राशिफल

- डॉ.केशव मिश्र

मेषराशि - धीमी गति से कार्य सिद्ध होंगे। मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान देना चाहिए। वाद-विवाद वाली स्थिति से बचना चाहिए। बाल-बच्चों की उन्नति होगी। विद्यार्थियों के लिये अध्ययन में अभिरुचि कम हो सकती है।

वृषभराशि - अधिक प्रयास करने पर भी उचित फल प्राप्ति में बाधायें आयेंगी। शारीरिक स्वास्थ्य ठीक-ठाक ही चलेगा। कारोबारी क्षेत्रों में लाभ का योग है। पारिवारिक स्थित मध्यम बना रहेगा। कोई आकस्मिक लाभ भी मिल सकता है।

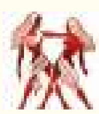

मिथुनराशि - आर्थिक उन्नति की सम्भावना बनेगी। उलझने जस की तस बनी रहेंगी। काम-काज में मन नहीं लगेगा। आलस्य और अवसाद से ग्रस्त रहेंगे। अचानक किसी वाद-विवाद के उठने की आशंका बनी रहेगी।

कर्कराशि - स्वास्थ सम्बन्धी सावधानियाँ रखनी चाहिए। आर्थिक उन्नति की सम्भावना बनेगी। वाद-विवाद के योग बन रहें हैं, छोटी-सी बात बहुत बड़ा विवाद खड़ा कर सकती है। अपने वाणी के ऊपर संयम रखें।

सिंहराशि - सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी। स्वास्थ्य सुख सामान्य रहेगा, खांसी, जुखाम, बुखार की स्थिति बनी रहेगी। मान-हानि, धन-हानि हो सकता है। अपनों के साथ मनमुटाव की स्थिति बनी रहेगी। सीधा कार्य करने पर भी उल्टा फल मिलेगा सावधान होकर कार्य करें।

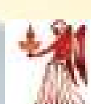

कन्याराशि - घरेलू समस्यायें बढ़ती रहेंगी। सट्टा लाटरी से दूर रहना उचित है। स्वास्थ ढीला, सुस्ती, अशान्ति, किसी पुराने चले आ रहे विवाद के कारण चिन्ता बढ़ेगी। आधि-व्याधि से परेशान रहेंगे। धन लाभ के योग हैं।

तुलाराशि - आर्थिक उन्नति के लिये प्रयासरत रहें। संगीत, गायन, मनोरंजन के साधनों के प्रति रुचि बढ़ेगी। हर काम में अड़चनें आएंगी, खर्च और तनाव बढ़ेगा। जमीन-जायदाद के काम में कुछ तेजी रहेगी।

वृश्चिकराशि - बौद्धिक कार्यों में सफलता मिलेगी। विद्यार्थी वर्ग को अध्ययन में अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता रहेगी। कारोबारी क्षेत्रों में उथल-पुथल की स्थिति बनी रहेगी। मास के मध्य में कुछ सुधार होगा, किन्तु अन्त में फिर कष्ट है। ॐ नमः शिवाय मन्त्र का जाप करें श्रेयस्कर सिद्ध होगा।

धनुराशि - किसी पर अचानक विश्वास करना नुकसानदायक हो सकता है। जमीन-जायदाद में सुअवसर का योग है किन्तु मामला हाथ से फिसल सकता है ध्यान दे कर कार्य सम्पादन करें।

मकरराशि - मधुर व्यवहार बनाये रखें। धार्मिक कार्यों का अवसर मिलेगा। गृह में क्लेश, अनबन, तनाव रह सकता है इसलिए हर किसी बातों के ऊपर ध्यान न दें अपना कार्य करे लाभदायक रहेगा।

कुम्भराशि - रोग पर धन व्यय होगा। भूमि सम्बन्धी विवाद तूल पकड़ सकता है। स्थानान्तरण के योग हैं। जीवन साथी की ओर ध्यान रखें स्वास्थ्य की चिन्ता बनेगी।

मीनराशि - व्यापार में हानि के योग, स्थिति मन्दा रहेगा। मास मध्य में कुछ सफलता प्राप्त होंगे। मासान्त अच्छा रहेगा। सम्पत्ति के क्रय-विक्रय के लिये स्थिति शुभ रहेगी। यात्रा का योग बन रहा है।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति

सप्तगिरि

(आध्यात्मिक मासिक पत्रिका)

चंदा भरने का पत्र

१. नाम : ....
(अलग-अलग अक्षरों में स्पष्ट लिखें) ....
....
पिनकोड ....
मोबाइल नं ....

२. वांछित भाषा : ☐ हिन्दी ☐ तमिल ☐ कन्नडा ☐ तेलुगु ☐ अंग्रेजी ☐ संस्कृत

३. वार्षिक / जीवन चंदा :

४. चंदा का पुनरुद्धरण :

(अ) चंदा की संख्या :

(आ) भाषा :

५. पेय रकम :

६. पेय रकम का विवरण :

नकद (एम.आर.टि. नं) दिनांक :

धनादेश (कूपन नं) : दिनांक :

मांगड्राफ्ट संख्या : दिनांक :

प्रांत :

दिनांकः चंदा भरनेवाला का हस्ताक्षर

- वार्षिक चंदा : रु.६०.००, जीवन चंदा : रु.५००-००
- नूतन चंदादार या चंदा का पुनरुद्धार करनेवाले इस पत्र का उपयोग करें।
- इस कूपन को काटकर, पूरे विवरण के साथ इस पते पर भेजें–
- संस्कृत में जीवन चंदा नही है, वार्षिक चंदा रु.६०-०० मात्र है।

प्रधान संपादक, सप्तगिरि कार्यालय, के.टी.रोड,
तिरुपति-५१७ ५०७. (आं.प्र)

नूतन फोन नंबरों की सूचना

चंदादारों और एजेंटों को सूचित किया जाता है कि हमारे कार्यालय का दूरभाष नंबर बदल चुका है और आप नीचे दिये गये नंबरों से संपर्क करें–

कॉल सेंटर नंबर
0877 - 2233333

चंदा भरने की पूछताछ
0877 - 2277777

अर्जित सेवाएँ और आवास के अग्रिम आरक्षण के लिए कृपया इस नंबर से संपर्क करें–

STD Code: 0877

दूरभाष :

कॉल सेंटर नंबर :
2233333, 2277777.

Edited and Published on behalf of T.T.Devasthanams by **Dr.K.Radha Ramana, M.A., M.Phil, Ph.D.,** Chief Editor, T.T.D. and Printed at T.T.D. Press by **Sri R.V.Vijaykumar,** B.A., B.Ed., **Dy.E.O.,** (Publications & Press), T.T.D. Press, Tirupati-517 507.

आंध्रप्रदेश की राजधानी अमरावती में ति.ति.दे. के द्वारा
श्री वेंकटेश्वर के नवीन मंदिर में श्री वेंकटेश्वर स्वामी की
मूल विराट की मूर्ति की तैयारी के संदर्भ में (०७-०७-२०१९) शिलापूजा दृश्य

इस उपलक्ष में ति.ति.दे. के न्यासमंडली के अध्यक्ष श्री वै.वी.सुब्बारेड्डीजी,
ति.ति.दे. आगमशास्त्र के पंडित, इतर पंडित, अर्चक, अधिकारीगण,
शिल्पाचार्य तथा भक्तों ने इसमें भाग लिया

SAPTHAGIRI
(HINDI) ILLUSTRATED MONTHLY
Published by
Tirumala Tirupati Devasthanams 25-07-2019
Regd. with the Registrar of Newspapers
under "RNI" No.10742,
Postal Regd.No.TRP/11 - 2018-2020
Licensed to post without prepayment
No.PMGK/RNP/WPP-04/2018-2020

श्रीकृष्ण जयंती
गोकुलाष्टमी
२३-०८-२०१९